॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद ॥

॥ अथ द्वादश काण्डम् ॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १ – भूमि सूक्त 4
सूक्त २- यक्ष्मारोगनाशन सूक्त 31
सूक्त ३- स्वर्गौदन सूक्त 52
सूक्त ४- वशा गौ सूक्त 80
सूक्त ५ – ब्रह्मगवी सूक्त 99

॥अथर्ववेद – द्वादश काण्डम्॥

सूक्त १ – भूमि सूक्त

पृथ्वी की स्तुति व वर्णन, धरातल की विशेषता तथा पृथ्वी का निर्माण

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१२,१.१॥

सत्यनिष्ठा, विस्तृत यथार्थ बोध, दक्षता, क्षात्रतेज, तपश्चर्या, ब्रह्मज्ञान और त्याग-बलिदान ये भाव भूमि अथवा मातृभूमि का पालन-पोषण और संरक्षण करते हैं भूतकालीन और भविष्य में होने वाले सभी जीवों का पालनकरने वाली मातृभूमि हमें विस्तृत स्थान प्रदान करे ॥१२,१.१॥

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥१२,१.२॥

हमारी जिस भूमि के मनुष्यों के मध्य (गुण, कर्म और स्वभाव की भिन्नता होने पर भी) परस्पर अत्यधिक सामञ्जस्य और ऐक्यभाव है, जो हमारी मातृभूमि रोगनाशक ओषधियों को धारण करती है, वह हमारी कामना पूर्ति और यशोवृद्धि का साधन बने ॥१२,१.२॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु
॥१२,१.३॥

हमारी जिस मातृभूमि में सागर, महासागर, नद, नदी, नहर, झीलें-तालाब, कुएँ आदि जल साधन हैं; जहाँ सब भाँति के अन्न, फल तथा शाक आदि अत्यधिक मात्रा में पैदा होते हैं, जिसके सभी प्राणी सुखी हैं, जिसमें कृषक लोग, शिल्पकर्म विशेषज्ञ तथा उद्यमी लोग अत्यधिक संगठित हैं, इस प्रकार की हमारी पृथ्वी हमें श्रेष्ठ भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो ॥१२,१.३॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु
॥१२,१.४॥

हमारी जिस भूमि में उद्यमी और शिल्पकला में निपुण, कृषि कार्य करने वाले हुए हैं, जिस भूमि में चार दिशाएँ और चार विदिशाएँ धान, गेहूँ आदि पैदा करती हैं, जो विभिन्न प्रकार से प्राणधारियों और वृक्ष- वनस्पतियों का पालन-पोषण और संरक्षण करती हैं, वह मातृभूमि हमें गौ आदि पशु और अन्नादि प्रदान करने वाली हो ॥१२,१.४॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरान् अभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥१२,१.५॥

हमारी जिस पृथ्वी में प्राचीन ऋषियों ने अनेक प्रकार के पराक्रमी कर्म सम्पन्न किये हैं, जिसमें देव समर्थक वीरों ने आसुरी शक्तियों से धर्म-युद्ध किया है, जिस भूमि में गाय, घोड़े और पशु-पक्षी विशेष रूप से आश्रय ग्रहण करते हैं, ऐसी हमारी मातृभूमि हमारे ज्ञान-विज्ञान, शौर्य, तेज, वीर्य और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली हो ॥१२,१.५॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥१२,१.६॥

विश्व के सभी जीवों का पोषण करने वाली, सम्पदाओं(खनिजों) की खान, सबको प्रतिष्ठित करने वाली, स्वर्णिम वक्ष वाली, जगत् (सभी प्राणियों) का निवेश करने वाली, वैश्वानर (प्राणाग्नि) का भरण-पोषण करने वाली यह भूमि अग्रणी, बलशाली इन्द्रदेव तथा हम सबको अनेक प्रकार के धन धारण कराने वाली हो ॥१२,१.६॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥१२,१.७॥

निद्रा, तंद्रा, आलस्य, अज्ञान आदि दुर्गुणों से रहित देवगण (या देवपुरुष) जिस विशाल भूमि की, प्रमाद रहित होकर रक्षा करते हैं, वह मातृभूमि सभी उत्तम, प्रिय तथा कल्याणकारी पदार्थों से हमें सुसम्पन्न करे तथा हमें ज्ञान, वर्चस् और ऐश्वर्य प्रदान करे ॥१२,१.७॥

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीत्यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥१२,१.८॥

जिस भूमि का हृदय परमव्योम के सत्य-अमृत प्रवाह से आवृत रहता है, मनीषीगण अपनी कुशलता से जिसका

अनुगमन करते हैं; वह भूमि हमारे श्रेष्ठ राष्ट्र में तेजस्विता, बलवत्ता बढ़ाने वाली हो ॥१२,१.८॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥१२,१.९॥

जिस धरा पर चारों ओर विचरने वाले परिव्राजक, संन्यासी शीतल जल की भाँति समदृष्टि सम्पन्न उपदेश देते हुए रात-दिन सजग होकर ज्ञान का संचार करते रहते हैं। जो भूमि में सभी प्रकार के अन्न-जल और दूध, घी इत्यादि प्रदान करती है, वह मातृभूमि हमारी तेजस्विता, प्रखरता को बढ़ाए ॥१२,१.९॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१२,१.१०॥

अश्विनीकुमारों ने जिस धरा का मापन किया, विष्णुदेव ने जिस पर विभिन्न पराक्रमी कार्य सम्पन्न किये और इन्द्रदेव ने जिसे दुष्ट शत्रुओं से विहीन करके अपने नियन्त्रण में किया था, वह पृथ्वी मातृसत्ता द्वारा पुत्र को दुग्धपान कराने के समान ही अपनी (हम सभी) सन्तानों को खाद्य पदार्थ प्रदान करे ॥१२,१.१०॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥१२,१.११॥

हे धरतीमाता ! आपके हिमाच्छादित पर्वत और वन हमारे लिए सुखदायक हों, वे शत्रुओं से रहित हों । विभिन्न रंगों वाली इन्द्रगुप्ता (इन्द्र-रक्षित) पृथ्वी पर मैं क्षय से रहित, कभी पराजित न होने वाला और अनाहत होकर प्रतिष्ठित रहूँ ॥१२,१.११॥

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२,१.१२॥

हे पृथिवीमाता !जो आपके मध्यभाग और नाभिस्थान हैं तथा आपके शरीर से जो पोषणयुक्त पदार्थ प्रादुर्भूत होते हैं, उसमें आप हमें प्रतिष्ठित करें और हमें पवित्रता प्रदान करें। यह धरती हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र हैं । पर्जन्य (उत्पादक प्रवाह) हमारे पिता हैं, वे भी हमें पूर्ण करें- सन्तुष्ट करें ॥१२,१.१२॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ॥१२,१.१३॥

जिस भूमि पर सभी ओर वेदिकाएँ बनाकर विश्वकर्मादि (विश्व सृजेता अथवा सृजनशील मनुष्यों यज्ञ का विस्तार करते हैं । जहाँ शुक्र (स्वच्छ या उत्पादको आहुतियों के पूर्व यज्ञीय यूप (आधार) स्थापित किये जाते हैं।यज्ञीय उद्घोष होते हैं। वह वर्धमान भूमि हम सबका विकास करे ॥१२,१.१३॥

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान् मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१२,१.१४॥

हे मातृभूमे ! जो हमसे द्वेष- भावना रखते हैं, जो सेना द्वारा हमें पराभूत करने के इच्छुक हैं, जो मन से हमारा अनिष्ट चाहते हैं, जो हमें परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ने की कुचेष्टा करते हैं, जो हमारी संहार करके हमें पीड़ा पहुँचाना चाहते हैं, ऐसे हमारे शत्रुओं का आप समूल नाश करें ॥१२,१.१४॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१२,१.१५॥

हे पृथिवीमाता ! आपसे उत्पन्न और आपके ऊपर विचरण करने वाले प्राणियों, दोपायों, चौपायों, सभी को आप पालन पोषण करती हैं । सूर्य अपनी अमृतस्वरूपी रश्मियों को जिनके लिए चारों ओर विस्तारित करतो है, ऐसे में पाँच प्रकार के मनुष्य (विद्वान्, शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार और सेवा धर्मरत) आपके ही हैं ॥१२,१.१५॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१२,१.१६॥

हे मातृस्वरूप भूमे ! सूर्य की किरणें हमारे निमित्त प्रज्ञाओं और वाणी का दोहन करें। आप हमें मधुर पदार्थ और वाणी प्रदान करें ॥१२,१.१६॥

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१२,१.१७॥

जिसमें सभी प्रकार की श्रेष्ठ वनस्पतियाँ और ओषधियाँ पैदा होती हैं, वह पृथ्वी माता विस्तृत और स्थिर हो । विद्या, शूरता, सत्य, स्नेह आदि सद्गुणों से पालित-पोषित, कल्याणकारी और सुख- साधनों को देने वाली मातृभूमि की हम सदैव सेवा करें ॥१२,१.१७॥

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१२,१.१८॥

हे पृथिवी माता ! आप हम सभी को रहने का स्थान देती हैं। इसलिए आप बढ़ती रहती हैं। आप जिस गति से आकाश में कम्पित होकर जाती हैं, वह वेग अतितीव्र है । इन्द्रदेव सजगता के साथ आपकी रक्षा करते हैं। आप स्वयं स्वर्ण के समान तेज: सम्पन्न हैं, हमें भी तेजस्वी बनाएँ, हममें परस्पर कोई द्वेषभाव न हो, हम सबके प्रिय हों ॥१२,१.१८॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥१२,१.१९॥

पृथ्वी के मध्य भाग और ओषधियों में, अग्नि तत्त्व विद्यमान है। जल (मेघ) में, विद्युत् (अग्नि) में, पत्थरों में (चकमक इत्यादि), मनुष्यों में, गौओं, घोड़ों आदि पशुओं में भी (जठराग्नि रूप में), अग्नि तत्त्व की उपस्थिति है ॥१२,१.१९॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥१२,१.२०॥

दिव्यलोक में, सूर्यरूप में अग्निदेव ही सब ओर प्रकाशित होते हैं, विशाल अन्तरिक्ष भी उसी प्रकाश स्वरूप अग्नि से आलोकित होता है । यज्ञ में प्रदत्त आहुतियों को ले जाने वाले घृत- स्नेहयुक्त अग्नि को मनुष्य प्रदीप्त करते हैं ॥१२,१.२०॥

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्रूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥१२,१.२१॥

असितवर्ण से पृथ्वी में स्थित अग्निदेव हमें प्रकाश से-तेजस्विता से संयुक्त करें ॥२१॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।

सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥१२,१.२२॥

जिस भूमि पर यज्ञ सुशोभित होते हैं और यज्ञों में मनुष्यों द्वारा देवताओं के लिए आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, जिससे मनुष्य भूमि पर श्रेष्ठ अन्न और जल से जीवन धारण करते हैं, वह भूमि हमें प्राण और आयु प्रदान करे। वह पृथ्वी हमें पूर्ण आयुष्य प्राप्त करने योग्य बनाए ॥१२,१.२२॥

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१२,१.२३॥

हे मातृभूमे ! आपके अन्दर विद्यमान श्रेष्ठ सुगन्धित ओषधियों और वनस्पतियों के रूप में जो गन्ध उत्पन्न होती है, जिसे अप्सराएँ और गन्धर्व भी धारण करते हैं। आप हमें उस सुगन्धि से सुरभित करें । हममें कोई परस्पर द्वेष न करे, सभी मनुष्य परस्पर मैत्रीभाव से रहें ॥१२,१.२३॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१२,१.२४॥

हे भूमे ! आपकी जो सुगन्धि कमल में प्रविष्ट हुई है, जिस सुगन्धि को सूर्या (उषा) के पाणिग्रहण के समय वायुदेव ने धारण किया, उसी सुगन्धि से आप हमें सुगन्धित करें । संसार में कोई भी पारस्परिक द्वेष-भाव ने रखें ॥१२,१.२४॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्यायां वर्चो यद्भूमे तेनास्मामपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१२,१.२५॥

हे मातृभूमे ! वीर पुरुषों, साधारण स्त्री- पुरुषों में और हाथी, घोड़े आदि चार पैरों वाले पशुओं में जो तेजस्विता है तथा अविवाहित कन्याओं में आपकी जो गन्ध (तेज है, वहीं गन्ध(तेजस्) हमारे अन्दर भी समाविष्ट हो । हमसे कोई द्वेष करने वाला न हो ॥१२,१.२५॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥१२,१.२६॥

जिस भूमि के ऊपर धूल, शिलाखण्ड़ और पत्थर हैं, जिसके भीतर स्वर्ण- रसादि अमूल्य खनिज पदार्थ हैं, उस धरती माँ को हम नमन करते हैं ॥१२,१.२६॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामछावदामसि ॥१२,१.२७॥

जिस भूमि में वृक्ष-वनस्पति और लता आदि सदा स्थिर रहते हैं, जो वृक्ष-लतादि ओषधिरूप में सबकी सेवा सम्पन्न करती है, ऐसी वनस्पतिधारिणी, धर्मधारिणी और सर्वपालनकर्वी धरती की हम शीश झुकाकर स्तुति करते हैं ॥१२,१.२७॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥१२,१.२८॥

हे मातृ भूमे ! हम दाँयें अथवा बायें पैर से चलते-फिरते, बैठे या खड़े होने की स्थिति में कभी दुखी न हों ॥१२,१.२८॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥१२,१.२९॥

क्षमा स्वरूपिणी, परम पावन और मन्त्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाली भूमि की हम स्तुति करते हैं। हे पुष्टिदात्री, अन्नरस और बल-धारणक पृथ्वी माता ! हम आपको घृताहुति समर्पित करते हैं ॥१२,१.२९॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ॥१२,१.३०॥

हे मातृभूमे ! आप हमारी शुद्धता के लिए स्वच्छ जल प्रवाहित करें । हमारे शरीर से उतरा हुआ जल हमारा अनिष्ट करने के इच्छुकों के पास चला जाए। हे भूमे ! पवित्रशक्ति (पवित्रता प्रदायक प्रवृत्तियों या प्रवाहों) से हम स्वयं को पावन बनाते हैं ॥१२,१.३०॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥१२,१.३१॥

हे भूमे ! आपकी पूर्व, पश्चिम आदि चारों दिशाओं, चारों उपदिशाओं तथा नीचे और ऊपर की दिशाओं में जो लोग विचरण करते हैं, वे सभी हमारे लिए कल्याणकारी हों। हमारा किसी प्रकार का अध: पतन न हो ॥१२,१.३१॥

मा नः पश्चान् मा पुरस्तान् नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥१२,१.३२॥

हे भूमे ! हमारे पूर्व- पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों दिशाओं में, आप प्रहरी बनकर संरक्षण करें, आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । दुष्ट शत्रु हमें न जान पाएँ, उन शत्रुओं के संहार से हमें मुक्त रखें ॥१२,१.३२॥

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन् मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥१२,१.३३॥

हे भूमे ! जब तक हम स्नेही (अपने प्रकाश से आनन्दित करने वाले) सूर्यदेव के समक्ष आपका विस्तार देखते रहें, तब तक हमारी आयुष्य वृद्धि के साथ नेत्रज्योति (दर्शनन्द्रियों में किसी प्रकार की शिथिलता नआए ॥१२,१.३३॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वमुत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥१२,१.३४॥

हे मातृभूमे ! जब सुप्तावस्था (सोयी हुई स्थिति में हम दाँयें और बायें करवट लें तथा आपके ऊपर पश्चिम की ओर पैर पसारते हुए पीठ नीचे की ओर करके शयन करें, तब सभी

मनुष्यों की आश्रयभूता हे भूमे ! आप हमारा संहार न करें ॥१२,१.३४॥

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥१२,१.३५॥

हे धरतीमाता ! जब हम (ओषधियाँ, कन्द आदि निकालने अथवा बीज बोने के लिए आपको खोदें, तो वे वस्तुएँ शीघ्र उगे-बढ़े। अनुसंधान के क्रम में हमारे द्वारा आपके मर्म स्थलों को अथवा हृदय को हानि न पहुँचे ॥१२,१.३५॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥१२,१.३६॥

हे विशाल मातृभूमे ! आपमें जो ग्रीष्म, वर्षा, शरद् , हेमन्त, शिशिर और वसन्त ये छह ऋतुएँ वर्षभर में प्रतिष्ठित की गई हैं, उन – उन ऋतुओं के दिन-रात सभी तरह से हमारे लिए सुखप्रद हों ॥१२,१.३६॥

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्न् अग्नयो ये अप्स्वन्तः ।

परा दस्यून् ददती देवपीयून् इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रं शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥१२,१.३७॥

हिलती हुई गतिशील जिस भूमि में अग्नि स्थित है, जो जल के अन्दर है। देववृत्तियों की अक्रोधक, वृन्न जैसे शत्रुओं का संहार करने वाले, देवराज इन्द्र का वरण करने वाली पृथ्वी, शक्तिशाली, वीर्यवान् और सामर्थ्यशाली पुरुष के लिए धारण की गई है ॥१२,१.३७॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥१२,१.३८॥

जिसे धरती पर हविष्यान्न समर्पित करने के लिए यज्ञ-मण्डप का निर्माण किया जाता है, जिसमें यज्ञ-स्तम्भ खड़े किये जाते हैं। जिस भूमि पर ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मंत्रों से प्रत्वग्गण पूजा अर्चना करते हैं और इन्द्रदेव के लिए सोमपान के कार्य में संलग्न रहते हैं ॥१२,१.३८॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥१२,१.३९॥

प्राचीन काल में जिस पृथ्वी पर प्राणिसमूह के हितैषी क्रान्तदर्शी ऋषियों ने सप्त सत्रवाले ब्रह्म-यज्ञ किये और तपःपूत वाणी द्वारा वन्दनाएँ कीं ॥१२,१.३९॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥१२,१.४०॥

वह पृथ्वी हमारी आवश्यकता के अनुरूप हमें वाञ्छित धन प्रदान करे । ऐश्वर्य हमारा सहायक हो । इन्द्रदेव अग्रणी होकर आगे बढ़े ॥१२,१.४०॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नान् असपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥१२,१.४१॥

जिस भूमि में मनुष्य प्रसन्नता से गाते तथा नृत्य करते हैं, जिसमें मनुष्य शौर्योचित गुण से परिपूर्ण राष्ट्र के संरक्षण के लिए युद्धरत होते हैं, जहाँ शत्रु रुदन करते हैं, जहाँ नगाड़े बजाये जाते हैं, वह पृथ्वी हमारे शत्रुओं को दूर भगाकर हमें शत्रुविहीन करें ॥१२,१.४१॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।

भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥१२,१.४२॥

जिस भूमि में धान, गेहूँ, जौ आदि खाद्य-पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते हैं, जहाँ (विद्वान् , शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार तथा सेवक) ये पाँच प्रकार के लोग आनन्दपूर्वक निवास करते हैं । जिस भूमि में निश्चित समय पर जलवृष्टि होकर अन्नादि का उत्पादन होता है, पर्जन्य से जिसका पोषण होता है, ऐसी मातृभूमि के प्रति हमारा नमन है ॥१२,१.४२॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥१२,१.४३॥

देवगणों द्वारा रचित हिंसक पशु पृथ्वी के जिस क्षेत्र में विभिन्न क्रीड़ाएँ सम्पन्न करते हैं, जो सम्पूर्ण विश्व को स्वयं में धारण किये है, उस पृथ्वी की प्रत्येक दिशा को प्रजापति हमारे लिए सौन्दर्य- सम्पन्न बनाएँ ॥१२,१.४३॥

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥१२,१.४४॥

अपने अनेक गुह्य स्थलों में धन, रत्न आदि तथा सोना, चाँदी आदि निधियों को धारण करने वाली पृथ्वी देवी हमारे लिए ये सभी खनिज पदार्थ प्रदान करें। धन प्रदात्री, वरदात्री दिव्य-स्वरूपा पृथ्वी हमारे ऊपर प्रसन्न होकर, हमें ऐश्वर्य प्रदान करे ॥१२,१.४४॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥१२,१.४५॥

अनेक प्रकार की धार्मिक मान्यता वालों और विभिन्न भाषा-भाषी जन समुदाय को एक परिवार के रूप में आश्रय देने वाली, अविनाशी और स्थिर स्वभाव वाली पृथ्वी, गाय के दूध देने के समान ही असंख्य ऐश्वर्य हमारे लिए प्रदान करने वाली बने ॥१२,१.४५॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत्पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन् नः सर्पन् मोप सृपद्यच्छिवं तेन नो मृड ॥१२,१.४६॥

हे मातृभूमे ! आप में जो साँप-बिच्छू आदि वास करते हैं, जिनका दंश प्यास और दाह पैदा करने वाला है, जिनके

काटने पर शरीर पर दाने उठ आते हैं, जो कृमि गुफा में सोते रहते हैं, ये सभी वर्षा ऋतु में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले प्राणी तथा रेंगने वाले विषैले प्राणी कभी हमारा स्पर्श न करें । जो प्राणिसमूह हमारे लिएकल्याणकारी हों, वे हमें सुख प्रदान करें ॥१२,१.४६॥

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥१२,१.४७॥

हे देवस्वरूपे ! मनुष्यों के चलने फिरने योग्य, रथ और गाड़ियों के चलने योग्य जो आपके मार्ग हैं, जिन पर परोपकाररत सज्जन और स्वार्थरत दुर्जन दोनों तरह के लोग विचरण करते हैं, उन्हें आप चोरों और शत्रुओं के भय से मुक्त करें । हम कल्याणकारी मार्ग से जाते हुए विजय प्राप्त करें, उन मार्गों से आप हमें सुखी करें ॥१२,१.४७॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥१२,१.४८॥

गुरुत्वाकर्षण शक्ति को धारण करने की क्षमता से युक्त, पुण्यात्मा और पापात्मा दोनों प्रकार के मनुष्यों को सहन

करती हुई वह पृथ्वी उत्तम जल देने के साथ मेघों से युक्त सूर्य की किरणों से अपनी मलीनता का निवारण करके, सूर्य के चारों ओर विशेषरूप से गमन करती है ॥१२,१.४८॥

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुछुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत्॥१२,१.४९॥

हे पृथिवि ! जो जंगली पशु, पुरुषभक्षी सिंह, बाघ आदि जंगल में घूमते-फिरते हैं, उन उल नामक पशुओं, भेड़ियों, भालुओं और राक्षसों को हमारे यहाँ से दूर करके हमें निर्भय बनाएँ ॥१२,१.४९॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तान् अस्मद्भूमे यावय ॥१२,१.५०॥

हे भूमे ! जो हिंसक, आलसी, दरिद्र, दूसरे के धन के हरणकर्ता, मांसभक्षी और राक्षसी वृत्तियों वाले आततायी हैं, उन सभी को हमसे पृथक् करें ॥१२,१.५०॥

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥१२,१.५१॥

जिस भूमि पर दो पैर वाले हंस, गरुड़ आदि पक्षी उड़ते हैं, जहाँ धूलि कणों को उड़ाती और पेड़ों को उखाड़ते हुए अन्तरिक्ष में संचरित होने वाले मातरिश्वा वायुदेव प्रवाहित होते हैं, उन वायुदेव की तीव्रता से अग्नि देव भी तीव्रगति से चलते हैं ॥१२,१.५१॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥१२,१.५२॥

जिस पृथ्वी पर अरुण और कृष्ण दिरात्रि मिलकर स्थित रहते हैं, जो पृथ्वी वृष्टि से आवृत रहती है, वह पृथ्वी हमें अपनी कल्याणकारी चित्तवृत्ति से प्रिय धामों में प्रतिष्ठित करे ॥१२,१.५२॥

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥१२,१.५३॥

द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल, मेधा (धारण शक्तियुक्त बुद्धि) तथा समस्त देवों ने हमें चलने (विभिन्न प्रकार से संव्याप्त होने) की शक्ति प्रदान की है ॥१२,१.५३॥

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥१२,१.५४॥

मैं शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाला, पृथ्वी में विशेषरूप से प्रख्यात हूँ। मैं शत्रुओं के सम्मुख पहुँच कर, उन्हें प्रताड़ित करूं । मैं हर दिशा में विद्यमान शत्रुओं को ठीक तरह से वश में कर लें ॥१२,१.५४॥

अदो यद्देवि प्रथमाना पुरस्ताद्देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत्तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥१२,१.५५॥

हे पृथिवी देवि ! जब आपका विकास नहीं हुआ था, तब देवताओं ने आपसे विस्तृत होने की प्रार्थना की थी, उस समय आपके अंदर श्रेष्ठ प्राणी प्रविष्ट हो गये, तभी आपने चार दिशाओं की कल्पना की थी ॥१२,१.५५॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥१२,१.५६॥

भूमि में जहाँ-जहाँ गाँव, नगर, वन, सभाएँ हैं तथा जहाँ संग्राम और युद्ध मन्त्रणाएँ सम्पन्न होती हैं, वहाँ-वहाँ हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१२,१.५६॥

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥

पृथ्वी पर उत्पादित होने वाले पदार्थ पृथ्वी पर वास करते हैं, उनके ऊपर अश्व के समान ही धूलिकण उड़ाते हैं । यह पृथ्वी प्रसन्नतादायी अग्रणी, विश्वरक्षक वनस्पतियों और ओषधियों का पालन करने वाली है ॥१२,१.५७॥

यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा ।
त्विषीमान् अस्मि जूतिमान् अवान्यान् हन्मि दोधतः ॥१२,१.५८॥

हम (अपने राष्ट्र के विषय में) जो उच्चारण करें, वह हितकर और मधुरता से भरा हुआ हो, जो देखें, वह सब हमारे लिए प्रिय (सहायक) हो। हम तेजस्वी, वेग- सम्पन्न हों तथा दूसरे (शत्रुओं) का संहार कर दें ॥१२,१.५८॥

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥१२,१.५९॥

शान्तिप्रद, सुगन्धिसम्पन्न, सुखदायी अन्न को देने वाली, पयस्वती मातृभूमि हमें उपभोग्य सामग्री और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो तथा हमारे पक्ष में बोले ॥१२,१.५९॥

यामन्वैछद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन् मातृमद्भ्यः ॥१२,१.६०॥

विश्वकर्मा ने जब अन्तरिक्ष में अर्णव (प्राथमिक उत्पादक प्रवाहों) से हवियों के द्वारा भूमि को निकाला, तो भोज्य पदार्थों के छिपे हुए भण्डार प्रकट हो गये ॥१२,१.६०॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥१२,१.६१॥

हे धरतीमाता !आप मनुष्यों को दुःखों से रहित करने वाली वाञ्छित पदार्थों को देने वाली, क्षेत्ररूपा और विस्तार वाली

हैं आपके भाग जो कम हो जाते हैं, उन्हें सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत प्रजापति ब्रह्मा पूर्ण कर देते हैं॥१२,१.६१॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥१२,१.६२॥

हे भूमे ! आपमें उत्पन्न हुए सभी लोग, नीरोग, क्षयरोगरहित होकर हमारे समीप रहने वाले हों । हम दीर्घायुष्य को प्राप्त करते हुए मातृभूमि के लिए हवि प्रदान करने वाले बनें ॥१२,१.६२॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥१२,१.६३॥

हे मातृभूमे ! आप हमें कल्याणकारी प्रतिष्ठा से युक्त करें । हे कवे ! हे देवि ! हमें ऐश्वर्य और विभूति में प्रतिष्ठित करते हुए स्वर्ग की प्राप्ति कराएँ ॥१२,१.६३॥

॥अथर्ववेद – द्वादश काण्डम्॥

सूक्त २- यक्ष्मारोगनाशन सूक्त

कुंताप अग्नि को दर करना, शव भक्षक अग्नि तथा गार्हपत्य अग्नि की स्तुति

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ्परेहि ॥१२,२.१॥

हे (क्रव्याद्) अग्ने ! आप नड (सरकंडे) पर आरोहण करें। आपके लिए यहाँ स्थान नहीं है, यह सीसा तुम्हारा भाग है, इस पर आप आएँ । जो यक्ष्मारोग गौओं और मनुष्यों में हैं, आप उस रोगसहित नीचे के द्वारों से यहाँ से दूर चली जाएँ ॥१२,२.१॥

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥१२,२.२॥

सभी रोग पापियों और दुष्टों के साथ यहाँ से दूर चले जाएँ। कर (क्रिया) और अनुकर (सहायक क्रिया) से यक्ष्मारोग को

अलग करता हूँ, उसके द्वारा मृत्यु को भी दूर भगाता हूँ ॥१२,२.२॥

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निरराातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्धयग्ने अक्रव्याद्यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥१२,२.३॥

हे (क्रव्याद्) अग्निदेव ! हम यहाँ से पाप देवता निति और मृत्यु को दूर करते हैं। जो हमारे साथ विद्वेष करते हैं, उनका आप भक्षण करें । जिनसे हम द्वेष रखते हैं, उनकी ओर हम आपको प्रेरित करते हैं ॥१२,२.३॥

यद्यग्निः क्रव्याद्यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥१२,२.४॥

यदि प्रेतदाहक (क्रव्याद्) अग्नि और हिंसक बाघ अन्यत्र कहीं स्थान न पाकर इस गोशाला में प्रवेश करे, तो उसे हम 'माषाज्य' विधि से दूर करते हैं, वह जल में वास करने वाली अग्नियों के समीप गमन करे ॥१२,२.४॥

यत्त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत्त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥१२,२.५॥

किसी मनुष्य की मृत्यु पर उसके दाह संस्कार के लिए प्राणियों ने क्रोध से आप (क्रव्याद् अग्नि) को प्रदीप्त किया, अब वह कार्य (शवदाह) सम्पन्न होने पर आपको, आपसे ही प्रदीप्त करते हैं ॥१२,२.५॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद्दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥१२,२.६॥

हे अग्निदेव ! आदित्य, रुद्र, वसु, धनप्रदाता ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति ने आपको सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करने के लिए पुन: प्रतिष्ठित किया था ॥१२,२.६॥

यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्न् इतरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्मंमिन्धां परमे सधस्थे ॥१२,२.७॥

जो मांसभक्षी (क्रव्याद्) अग्निदेव दूसरे जातवेदा अग्नि को देखते हुए हमारे घर में प्रविष्ट हुए हैं, उन्हें पितृयज्ञ के निमित्त हम दूर ले जाते हैं, वे परम व्योम में धर्म (उष्णता) की वृद्धि करें ॥१२,२.७॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्
॥१२,२.८॥

क्रव्याद् अग्नि को हम दूर ले जाते हैं, वह दोष को दूर करने वाले मृत्युदेव यमराज के समीप पापसहित चला जाए । यहाँ जो द्वितीय जातवेदा अग्नि है, वह सभी देवों के लिए यजनीय भाग का वहन करे ॥१२,२.८॥

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु
॥१२,२.९॥

मनुष्यों को मृत्यु की ओर ले जाने वाले प्रेतदाहक अग्नि को हम मन्त्ररूप वज्रास्त्र द्वारा दूर भगाते हैं । हम ज्ञानसम्पन्न लोग गार्हपत्य अग्नि द्वारा उसे नियन्त्रित करते हैं। पितरों के लोक में उस क्रव्याद् अग्नि का भाग अवश्य स्थित हो ॥१२,२.९॥

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम्
॥१२,२.१०॥

उक्थ्य की प्रशंसा करने वाले प्रेतदाहक अग्नि को हम पितरों के गमन मार्ग से दूर भेजते हैं। देवयान के मार्ग से आप दोबारा यहाँ न आएँ । आप पितरलोक में रहते हुए वहीं जाग्रत् रहें ॥१२,२.१०॥

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥१२,२.११॥

पवित्र अग्निदेव ही जीव के कल्याण के निमित्त शवभक्षक अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। इससे सभी दुर्भावजन्य दोषों और पापकर्मों का निवारण होता है। पवित्र अग्निदेव प्रदीप्त होकर सभी की शुद्धि करते हैं ॥१२,२.११॥

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत्।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्मामशस्त्याः ॥१२,२.१२॥

दहन कार्य में प्रयुक्त अग्निदेव प्रदीप्त होकर द्युलोक में आरोहण करते हैं, हम सभी को पापों से बचाते हुए अप्रशस्त (न अपनाने योग्य-अलक्षित) मार्ग से संरक्षित करते हैं ॥१२,२.१२॥

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत्॥१२,२.१३॥

इस विदाहक अग्नि में हम सभी अपने दुष्कर्मों का शोधन करते हैं। हम शुद्ध हो गये हैं और यज्ञीय कार्यों के उपयुक्त बन गये हैं। अग्निदेव हमें दीर्घायु बनाएँ ॥१२,२.१३॥

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद्दूरमनीनशन् ॥१२,२.१४॥

संघातक, विघातक और शब्दरहित अग्निदेव आपके यक्ष्मा रोग को जानने वाले यक्ष्मा के साथ ही अतिदूर जाकर के विनष्ट हो गये ॥१२,२.१४॥

यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु ।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥१२,२.१५॥

जो अग्नि हमारे अश्वों, वीरपुरुषों, गौओं और भेड़ बकरियों में लोगों के लिए पीड़ाप्रद है, उस मांसभक्षी अग्नि को हम दूर करते हैं ॥१२,२.१५॥

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥१२,२.१६॥

जीवनक्रम के विनाशक क्रव्याद् अग्नि को गौओं, घोड़ों और अन्य मनुष्यों से हम दूर करते हैं ॥१२,२.१६॥

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥१२,२.१७॥

हे अग्निदेव ! जिसमें देवगण और मनुष्य पवित्र होते हैं, उसमें घृताहुति से शुद्ध बनकर आप भी दिव्यलोक में आरोहण करें ॥१२,२.१७॥

समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥१२,२.१८॥

हे आवाहित अग्निदेव ! प्रज्वलित होकर आप हमारा त्याग न करें । आप द्युलोक में प्रकाशमान हों। आप हमें चिरकाल तक सूर्य के दर्शन से निरंतर लाभान्वित करें ॥१८॥

सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत्।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥१२,२.१९॥

हे मनुष्यो ! आप सिर के रोग को सीसे और नड़ नामक घास से दूर करें । उसे आप संकसुक (विनाशक) अग्नि में, भेड़ और स्त्री तथा सिर रखने के स्थान (तकिए) में स्थित मल को शुद्ध करें ॥१२,२.१९॥

सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥१२,२.२०॥

हे मनुष्य !आप सिर तकिए पर रखें तथा मल को सीसे तथा काली भेड़ में शोधित करके पवित्र हो जाएँ ॥१२,२.२०॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥१२,२.२१॥

हे मृत्यु ! देवयान मार्ग से भिन्न आपका जो (हीन) मार्ग है, वह हम से दूर रहे । हमारे वीर (वीर पुरुष या प्राण प्रवाह) बढ़ते रहें ॥१२,२.२१॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन् अभूद्भद्रा देवहुतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१२,२.२२॥

ये जीवित (दिखने वाले लोग मृतकों (निर्जीव व्यक्तियों या मानसिकता) से घिरे हुए हैं। (हम जीवन्त रहें। इसलिए श्रेष्ठ वाणियाँ (सत्पुरुषों के वचन अथवा देव प्रार्थनाएँ हमारे लिए आज कल्याणप्रद हों । हम हँसते-नाचते (उल्लासपूर्वक) आगे बढ़े और श्रेष्ठ वीरों (वा प्राणों) के साथ विशिष्ट प्रयोजनों में लगे रहें ॥१२,२.२२॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥१२,२.२३॥

जीवों-प्राणियों के लिए यह मर्यादा देता हूँ, कोई भी इन (मर्यादाओं) का उल्लंघन कभी न करे । (इस अनुशासन में रहकर) सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त करे तथा मृत्यु को पर्वतों (दृढ़ माध्यमों) से तिरोहित करे ॥१२,२.२३॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥१२,२.२४॥

वृद्धावस्था तक की दीर्घ आयु का वरण करो । एक के बाद एक प्रयास (प्रगति हेतु) करते रहें । श्रेष्ठ सृजन करने वाले त्वष्टादेव सभी को पूर्ण आयु तक ले जाएँ ॥१२,२.२४॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ र्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्
॥१२,२.२५॥

हे धाता (धारणकर्ता) ! जैसे दिन एक के साथ दूसरा लगा रहता है, जैसे ऋतुएँ एक से एक जुड़ी रहती हैं, जिस प्रकार ये एक दूसरे को छोड़ते नहीं, उसी प्रकार जीवन को (सतत प्रवाह वाला) बनाएँ ॥१२,२.२५॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवान् उत्तरेमाभि वाजान्
॥१२,२.२६॥

(हे साथियों !) चट्टानों वाली (वेगवती) नदी बह रही है ।सावधान हो जाओ, वीरत्व धारण करो और तैर जाओ तैरने में बाधक बने उन(वजनों-पाप वृत्तियों) को यहीं फेंक दो ।पार होकर रोगरहित पौरुष प्राप्त होगा ॥१२,२.२६॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्न् अशिवाः शिवान्त्स्योनान् उत्तरेमाभि
वाजान् ॥१२,२.२७॥

हे मित्रगण ! आप उठे और तैरने के लिए तैयार हों, यह पत्थरों से युक्त नदी वेगपूर्वक बह रही है। जो अकल्याणकारी है, उसे यहीं फेंकें। हम तैरकर नदी को पार करके, सौख्यप्रद अन्न को उपलब्ध करें ॥१२,२.२७॥

वैश्वदेवीं वर्चसा आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम
॥१२,२.२८॥

हे (पवित्र करने वाले) पावको ! आप शुद्ध, पावन और दो विकारों से रहित होकर कल्याण के निमित्त सभी देवों की स्तुति प्रारम्भ करें । हम ऋक्षदों से पापों का अतिक्रमण करते हुए पुत्र-पौत्रादि सभी वीरों के साथ सौ वर्षों तक आनन्दपूर्वक रहें ॥१२,२.२८॥

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन
॥१२,२.२९॥

ऋषियों ने त्रिसप्त (तीन क्रमों में सात) पुरुषार्थ करके, ऊपर वाले श्रेष्ठ वायुयुक्त मार्गों से (चलकर) नीचे वालों (हीन पथों) का अतिक्रमण किया। इस प्रकार अपने

पदोपनयन (पैरों को, कदमों को संतुलित ढंग से रखने के क्रम द्वारा मृत्यु को पराजित किया ॥१२,२.२९॥

मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम
॥१२,२.३०॥

मृत्यु के चरणों को (विनाशकारी चरण क्रम को रोककर, अधिक लम्बी तथा श्रेष्ठ आयु को धारण करें । इस क्रम में स्थित होकर मृत्यु को पीछे धकेल दें। ऐसा जीवन जिओगे, तो अपने आवास्थल (शरीर, घर या क्षेत्रों में विशिष्ट प्रयोग (यज्ञादि की बात कह सकोगे ॥१२,२.३०॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे
॥१२,२.३१॥

ये नारियाँ श्रेष्ठ पलियाँ बनें, सधवा रहें, अंजन (दृष्टि शोधक) तथा घृत (तेजोवर्द्धक) आदि तत्वों से युक्त रहें । वे रोगरहित (स्वस्थ शरीर) तथा अश्ररहित (उल्लसित मन वाली) होकर श्रेष्ठ रत्नों (गुणों या नर रलों) कोजन्म देने वाली बनकर अग्रणी श्रेणियों में उन्नति करें ॥१२,२.३१॥

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि
॥१२,२.३२॥

हविष्यान्न द्वारा हम इन दोनों मृतकों (पितरों) और जीवितों (मनुष्यों) को ही विशेष लाभान्वित करते हैं। ज्ञानशक्ति से हम इनकी विशेष कल्पना करते हैं । पितरगणों को दी जाने वाली स्वधायुक्त आहुति को हम अविनाशी बनाते हैं तथा इन्हें दीर्घायु से सम्पन्न करते हैं ॥१२,२.३२॥

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम्
॥१२,२.३३॥

हे पितरगण ! जो अमर फलप्रदाता अग्नि मनुष्यों के हृदय में प्रविष्ट होती है, उस दिव्य अग्नि को हम अपने अन्दर ग्रहण करते हैं। वह हमारे साथ विद्वेष न करे और हम भी उससे द्वेष न करें ॥१२,२.३३॥

अपावृत्य गार्हपत्यात्क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥१२,२.३४॥

हे मनुष्यो ! तुम मंत्र प्रयोग से, गार्हपत्य अग्नि से दूर होकर क्रव्याद् (मृतककर्म में प्रयुक्त अग्नि) की ओर दक्षिण दिशा में जाओ। वहाँ पर ज्ञानियों, पितरों तथा अपनी प्रसन्नता के लिए प्रिय कार्य करो ॥१२,२.३४॥

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥१२,२.३५॥

जो व्यक्ति क्रव्याद् अग्नि को शान्त नहीं करता, वह पितृसम्पदा के दो भाग (स्वयं की और ज्येष्ठ पुत्र की सम्पदा) मिलने पर भी क्षीणता को प्राप्त होता है ॥१२,२.३५॥

यत्कृषते यद्वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन् नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥१२,२.३६॥

जो व्यक्ति क़व्यादग्नि को शांत नहीं करता, उसकी कृषि, सेवनीय-वस्तुएँ, मूल्य देकर प्राप्त की गई वस्तुएँ आदि समाप्तप्राय हो जाती हैं ॥१२,२.३६॥

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद्यं क्रव्यादनुवर्तते ॥१२,२.३७॥

जो व्यक्ति क्रव्याद् अग्नि को विलग नहीं करता, वह यज्ञ करने की अपनी पात्रता समाप्त कर देता है। तेजरहित व्यक्ति की हवि भी देवगण स्वीकार नहीं करते ।उस व्यक्ति के कृषि, गौएँ और ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं ॥१२,२.३७॥

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद्यान् अग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥१२,२.३८॥

क्रव्याद् अग्नि जिसके पीछे पड़ जाती है, वह व्यक्ति पीड़ाजनक स्थिति को प्राप्त होता है। उसे आवश्यक साधनों के लिए भी बारम्बार दीनतायुक्त वचनों का प्रयोग करना पड़ता है ॥१२,२.३८॥

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन् म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वान् एष्यो यः क्रव्यादं निरादधत्॥१२,२.३९॥

जब स्त्री का पति मर जाता है, तब घर यातना- केन्द्र जैसे बन जाते हैं । (उस समय) ज्ञानी ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ परमार्थपरायण) ही बुलाने योग्य (परामर्श लेने योग्य) होता है । वह क़व्याद् अग्नि को शांतकर (उचित मार्ग का निर्धारण कर) सकता है ॥१२,२.३९॥

यद्रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।

आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत्॥१२,२.४०॥

जो पाप, दोष और दुष्कर्म हमारे द्वारा किये गये हैं, उनसे और प्रेतदाहक अग्नि के स्पर्श से हमें जो दोष लगा है, उससे जल हमें पवित्रता प्रदान करे ॥१२,२.४०॥

ता अधरादुदीचीरावव्रत्रन् प्रजानैतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥१२,२.४१॥

जो जल देवों के गमन मार्ग से दक्षिण से उत्तर के स्थानों को घेरता है, तत्पश्चात् वही प्राचीन जल नूतन रूप होकर वर्षा करने वाले पर्वतीय शिखरों पर नदियों के रूप में प्रवाहित होता है ॥१२,२.४१॥

अग्ने अक्रव्यान् निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥१२,२.४२॥

हे अक्रव्याद् अग्निदेव ! आप क्रव्याद् (मांस भक्षक) अग्नि को हमसे पृथक् करें । देवों की पूजन सामग्री को देवों के समीप पहुँचाएँ ॥१२,२.४२॥

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात्।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥१२,२.४३॥

क्रव्याद् अग्नि ने इस व्यक्ति में अपना प्रभाव जमा लिया है, यह व्यक्ति भी उस शवभक्षक का अनुगामी हो गया है । मैं इन दोनों को व्याघ्ररूप मानता हूँ । कल्याण से भिन्न अशिवरूप अनेकों को अपने साथ ले जाने वाली क्रव्याद् अग्नि को मैं विलग करता हूँ ॥१२,२.४३॥

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयान् अन्तरा श्रितः ॥१२,२.४४॥

गार्हपत्य अग्निदेव देवताओं और मनुष्यों के मध्यस्थ हैं; क्योंकि वे देवताओं की अन्तर्धि (अन्दर स्थित) और मनुष्यों की परिधि (बाहरी रक्षक सीमा) स्वरूप हैं ॥१२,२.४४॥

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गछन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्न् अरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥१२,२.४५॥

हे अग्ने !आप प्राणियों की आयुष्य बढ़ाएँ और जिनका निधन हो चुका है, वे पितरलोक को प्राप्त करें। श्रेष्ठ गार्हपत्य अग्निदेव शत्रुओं को संतप्त करें और हमारे लिए प्रत्येक उषा को कल्याणमय बनाएँ ॥१२,२.४५॥

सर्वान् अग्ने सहमानः सपत्नान् ऐषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ १२,२.४६॥

हे अग्निदेव ! सभी प्रकार के दुष्टों , शत्रुओं को पराभूत करते हुए आप उनकी सम्पत्ति और सामर्थ्य को हमारे अंदर स्थापित करें ॥१२,२.४६॥

इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात्। तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥१२,२.४७॥

हे मनुष्यो ! आप इन सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यशाली अग्नि की उपासना प्रारंभ करें। ये आपको निंदनीय दुष्कर्मों से दूर करें। उन (दुष्कर्मों) के अस्त्रों को नष्ट करें तथा रुद्रदेव के अस्त्रों से स्वयं को संरक्षित करें ॥१२,२.४७॥

अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात्। आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥१२,२.४८॥

(हे साधको) भार वहन करके तैरने वाली इस सवितादेव की नाव पर चढ़ो; यह तुम्हें निन्दनीय दुष्कर्मों दुष्प्रवृत्तियों

से बचाएगी ।उनकी विशाल छह शक्तियों के सहारे हम अमति (अज्ञान) को पार कर सकेंगे ॥१२,२.४८॥

अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत्क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥१२,२.४९॥

हे तल्प (सुखद सहारा देने वाले – सविता या गार्हपत्य अग्नि) ! आप हमारे क्षेम (कुशलता) का निर्वाह करते हुए दिन-रात हमें बढ़ाते हुए श्रेष्ठवीर की तरह गतिशील रहते हैं। उत्तम मन वाले आतुरतारहित साधकों को धारण करने वाले आप सुगन्धियुक्त पुरुषार्थ हमें प्रदान करें ॥१२,२.४९॥

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।
क्रव्याद्यान् अग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥१२,२.५०॥

जो पाप से आजीविका चलाते हैं, वे पुरुष देवों से अपना संबंध तोड़ लेते हैं। उन्हें क्रव्याद् अग्नि उसी तरह कुचलती है, जिस प्रकार घोड़ा नड नामक घास को कुचलता है ॥१२,२.५०॥

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते ।

ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥१२,२.५१॥

जो धनकामी, अश्रद्धालु दूसरों की हाँड़ी (पके – पकाये अन्न या धन) हथियाते हैं, वे क्रव्याद् (उत्पीड़क) अग्नि के निकट पहुँच जाते हैं ॥१२,२.५१॥

प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।
क्रव्याद्यान् अग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥१२,२.५२॥

जिसके पल्ले क्रव्याद् (प्रेतकर्मा) अग्नि पड़ जाती है । वह मन से बार-बार पतनशील कर्मों की ओर लौटना उन्हीं में प्रवृत्त होना चाहता है ॥१२,२.५२॥

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥१२,२.५३॥

हे मांसभक्षक अग्ने ! काले वर्ण की भेड़ आपका भाग है, सीसा और चन्द्र (लोहा-स्वर्ण आदि धातु) भी आपके ही भाग कहे गये हैं । पिसे हुए उड़द आपके हविष्यान्न हैं। आप घरों से दूर जंगल में निवास करें ॥१२,२.५३॥

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥१२,२.५४॥

हे इन्द्रदेव !आपने बहुत पुरानी मुँज, तिलों का पुञ्ज, समिधा और सरकंडे की आहुति देकर यमाग्नि को पृथक् किया ॥१२,२.५४॥

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥१२,२.५५॥

सहीं पथ का ज्ञाता (साधक) सामने गतिशील सूर्य को (श्रद्धा) समर्पित करता हुआ उस (धर्म मार्ग में विशेष रूप से प्रवृत्त होता है । वह मृतकों के प्राणों को भी परमगति प्रदान करता है। मैं (अषि ऐसे जीवन्तों को दीर्घायुष्य प्रदान करता हूँ ॥१२,२.५५॥

॥अथर्ववेद – द्वादश काण्डम्॥

सूक्त ३- स्वर्गौदन सूक्त

अग्नि की स्तुति, ओदन का प्रभाव, पृथ्वी की स्तुति तथा वनस्पति की प्रशंसा

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद्वां वयो यमराज्ये समानम्
॥१२,३.१॥

हे पुरुषार्थी पुरुष !आप अधिकारपूर्वक इस चर्म आसन पर विराजमान हों, जो आपके आत्मीयजन हैं, उन्हें बुलाएँ ।जितने पति-पत्नी इस प्रक्रिया को पहले कर चुके हैं, उनका तथा आप दोनों दम्पती का फल समान हो ॥१२,३.१॥

तावद्वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत्तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान् मिथुना सं भवाथः
॥१२,३.२॥

(हे दम्पती) अग्निदेव जिस प्रकार आपके शरीरों को तपाते हैं, उसी के अनुरूप तुम्हारी दृष्टि है, वैसा ही वीर्य है, वैसा ही तेज है और वैसा ही बल है। इसी परिपाक विधि से यह जोड़े (नर-मादा) उत्पन्न होते हैं ॥१२,३.२॥

समस्मिंल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद्रेतो अधि वां संबभूव ॥१२,३.३॥

आप दोनों इस अन्न के प्रभाव से इस लोक में परस्पर मिलकर रहें, देवत्व के मार्ग पर साथ-साथ बढ़े, नियन्ता (यम) के राज्य में भी एक साथ मिलकर रहें । आप दोनों का उत्पादक तेज मिलकर जो कुछ भी उपलब्धियाँ पा सकता है, उसे स्वयं प्राप्त करें ॥१२,३.३॥

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुरोदनं पचति वां जनित्री ॥१२,३.४॥

हे पुत्रो ! जीवन से संयुक्त होकर, जीवन को धन्य बनाने वाले अप् (जीवन जल या प्रवाह) में प्रवेश करो। तुम्हारी माता (देहधारी माँ-अथवा प्रकृति) जिस अन्न को पका रही है, उसे हम बतलाते हैं, उसकेअमृत का सेवन करो ॥१२,३.४॥

यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान् निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥१२,३.५॥

यदि आपके माता-पिता पापमय और मलिन वाणी के प्रयोग से मुक्त होने के लिए अथवा किसी अन्य पाप से मुक्ति हेतु ओदन पकाते हैं, तो वह सस्रों धाराओं से सुखों को देने वाला ओदन अपनी महिमा से घुलोकऔर पृथ्वीलोक दोनों में व्याप्त हो जाता है ॥१२,३.५॥

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥१२,३.६॥

हे दम्पती ! द्यावा-पृथिवी में यजमान जिन लोकों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, उन लोकों में जो मधुर और तेजस्विता-सम्पन्न लोक हैं, उनमें आप सुसन्ततियों के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त आनन्दित रहें ॥१२,३.६॥

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।

यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ॥१२,३.७॥

हे दम्पती ! आप प्रकाशरूप पूर्व दिशा की ओर अग्रसर हों, इस स्वर्गीय सुखरूप लोक को श्रद्धालु लोग ही उपलब्ध करते हैं। जो आपका परिपक्व हविष्यान्न अग्नि में समर्पित किया गया है, उसके संरक्षण के लिएआप दोनों सन्नद्ध हों ॥१२,३.७॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत्। तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात्॥१२,३.८॥

हे स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होते हुए इस पात्र के चारों और परिक्रमा करके वापस आएँ, उस समय आपके पितरजनों के साथ समान-विचार धारा से युक्त होकर नियामक देव (यम) परिपक्व अन्न के लिए प्रचुर सुख प्रदान करें ॥१२,३.८॥

प्रतीची दिशामियमिद्वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च । तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान् मिथुना सं भवाथः ॥१२,३.९॥

यह पश्चिम दिशा है, जो दिशाओं में श्रेष्ठ है । जिस दिशा में सोमदेव अधिपति और सुखदायक है, उनका आश्रय ग्रहण करते हुए आप श्रेष्ठ पुण्य कर्मों को सम्पन्न करें । हे दम्पती ! इसके बाद आप दोनों परिपक्व अन्न के प्रभाव से संयुक्त-शक्तिशाली हों ॥१२,३.९॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद्दिशामुदीची कृणवन् नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम
॥१२,३.१०॥

यह उत्तर का प्रकाशमान क्षेत्र प्रजाजनों से सम्पन्न है, दिशाओं में श्रेष्ठ उत्तर दिशा में आगे बढ़ाए । व्यवस्थित छन्द (ज्ञान) प्रादुर्भूत हुआ है । हम सभी अपनी सर्वांगीण उन्नति के साथ प्रादुर्भूत हों ॥१२,३.१०॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम्
॥१२,३.११॥

हे संसार की हितकारिणी पृथ्वी देवि ! आप अटल और विराट् हैं, आप हम सबके लिए कल्याणकारिणी हों । आप हमारे लिए और हमारी सन्ततियों के लिए शुभकर हों।

आप निर्धारित संरक्षक की तरह इस परिपक्व -(अन्न या प्रजा) की सुरक्षा करें ॥१२,३.११॥

पितेव पुत्रान् अभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥१२,३.१२॥

है पृथ्वी देवि ! पिता पुत्रों के सम्मिलन के समान ही आप हम सबके साथ व्यवहार करें । इस पृथ्वी पर हमारे लिए कल्याणकारी वायु बहाते रहें। जिस अन्नभाग को ये दोनों (दम्पती अथवा द्यावा-पृथिवी) परिपक्व करते हैं, वे हमारे तपः प्रभाव और सत्य संकल्प से अवगत हों ॥१२,३.१२॥

यद्यद्कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥१२,३.१३॥

यदि काला पक्षी (कौआ या कुसंस्कारी) कपट रीति से बिल बनाकर इसमें प्रविष्ट हो अथवा गीले हाथों वाली दासी ऊखल और मूसल को खराब कर दे, तो यह जल उन्हें शुद्ध करे ॥१२,३.१३॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम्
॥१२,३.१४॥

यह विशाल आधारयुक्त पत्थर हविरूप अन्न को कूटकर तैयार करता है । पवित्रे (पवित्रकारक उपकरणों) से पुनीत होता हुआ यह दुष्ट वृत्तियों (कूड़े-करकट) का संहार करे । हे ओदन (परिपक्व अन्न) ! आप पृथ्वी की त्वचा पर बैठे और अतिकल्याणप्रद हों । स्त्री- पुरुषों और उनकी सन्ततियों को पाप स्पर्श भी न कर सके ॥१२,३.१४॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचामपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकामभि सर्वान् जयेम
॥१२,३.१५॥

देवशक्तियों के साथ वनस्पतिदेव हमारे समीप आ गये हैं, वे सभी रोग बीजरूपी राक्षसों और पिशाचों को दूर करते हैं । वे ऊँचे उठकर उद्घोष करते हैं कि सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त करेंगे ॥१२,३.१५॥

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्मामुत यश्चकर्श
।

त्रयस्त्रिंशद्देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१२,३.१६॥

पशुओं (जीवों) ने सात मेघों (यज्ञों अथवा अन्नों) को ग्रहण किया। तैंतीस देवता उनका सेचन करते हैं। इनमें जो तेजस्वी और सूक्ष्म हैं, वे हमें स्वर्गलोक में पहुँचाएँ ॥१२,३.१६॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन् निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥१२,३.१७॥

हे ओदन !आप हमें स्वर्गलोक में पहुँचा रहे हैं, वहाँ हम अपनी भार्या और सन्तति सहित पहुँचें । निति और शत्रु हमको प्रताड़ित न कर सकें, इसलिए हम आपका हाथ पकड़ते हैं, आप हमारा संरक्षण करें ॥१२,३.१७॥

ग्राहिं पाप्मानमति तामयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥१२,३.१८॥

हे वनस्पतिदेव ! (आपके प्रभाव से हम) पाप द्वारा प्रादुर्भूत अन्धकार को दूर करते हुए मधुर वाणी उच्चरित करेंगे।

यह वानस्पत्य ऊर्ध्वगामी होकर देवपथ में जाने वाले हमारे (हम साधकों के हितों) और चावलों (हव्यान्न) की हिंसा न करे ॥१२,३.१८॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावान् अप तद्विनक्तु ॥१२,३.१९॥

(हे दिव्य अन्न) चारों ओर से घृत से सिञ्चित हुए आप उस (घृतादि) के साथ एकरूप होकर (पर्जन्य के रूप में) इस लोक में हमारे समीप आएँ । प्रतिवर्ष प्रवृद्ध होने वाले आप सूर्य की संगति से तिनकों और भूसी को दूर करें ॥१२,३.१९॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥१२,३.२०॥

ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मशक्ति द्वारा तीनों लोक संयुक्त हुए हैं।(इस अन्न में) यह घुलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष के अंश हैं। (हे दम्पती ! तुम दोनों इनके अंशों को लेकर कार्य आरंभ करो। यह फले-बढ़े और पुन: सूप में (सफाई के लिए आएँ ॥१२,३.२०॥

पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा
॥१२,३.२१॥

पशु (व्य पदार्थी भिन्न-भिन्न होते हैं ; किन्तु समृद्ध (तैयार किये जाने पर एक रूप हो जाते हैं। है। वन् ! आप इनकी लोहिनी (लाल या कठोर) त्वचा को हटा दें तथा जैसे धोबी वस्त्र शुद्ध करते हैं, वैसे इसे शोधित करें ॥१२,३.२१॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा
।
यद्यद्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद्वपामि
॥१२,३.२२॥

हे मूसल ! तुम पृथ्वी तत्त्व से बने होने के कारण पृथ्वी ही हो, अतः मैं पृथ्वी को पृथ्वी में ही मारता हूँ। पृथ्वी और तुम्हारा शरीर समान है । हे ओदन ! मूसल के प्रहार से तुम्हें जो पीड़ा पहुँच रही है, उससे तुम भूसी से पृथक् हो जाओ। मैं तुम्हें वेद मन्त्रों से अग्नि में अर्पित करता हूँ ॥१२,३.२२॥

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।

उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥१२,३.२३॥

(ओदन पाक के संदर्भ में कथन है) जननी जैसे पुत्र को सँभालती है, वैसे हम पृथ्वी (वेदिका) पर पृथ्वी (कुंभी एवं अन्नादि) को स्थापित करते हैं। उखा (अग्निपात्र) तथा कुंभी (पाक पात्र) वेदिका पर व्यथित न हों, क्योंकिआपको यज्ञ साधनों तथा घृतादि से सिञ्चित किया गया है ॥१२,३.२३॥

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात्त्वा सोमः सं ददातै ॥१२,३.२४॥

आपको पकाने वाले अग्निदेव आपकी रक्षा करें । इन्द्रदेव संरक्षण करें । मरुद्गण दक्षिण दिशा से, वरुणदेव पश्चिम दिशां तथा सोमदेव उत्तर दिशा की ओर से आपके आधार को सुदृढ़ करते हुए सुरक्षित करें ॥१२,३.२४॥

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद्दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥१२,३.२५॥

पवित्र कर्मों से पावन बनकर जल धाराएँ शुद्ध करती हैं। वे द्युलोक और फिर पृथ्वी को प्राप्त होती हैं । इन जीवनदायिनी, जीव को कृतार्थ करने वालों, सबकी आधारभूत, पात्र में अधिष्ठित जलधाराओं को अग्निदेव चारोंओर से संतप्त (दीप्त) करें ॥१२,३.२५॥

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥१२,३.२६॥

दिव्यलोक से आगमन करने वाली जल-धाराएँ पृथ्वीलोक में एकत्रित होती हैं, पृथ्वी से (वाष्पभूत होकर) पुनः अन्तरिक्ष में घनीभूत होती हैं। वह शुद्ध जल सबको पावन बनाता है । ऐसा (यज्ञीय धान्य से मिले हुए) पवित्र जल हमें स्वर्गीय सुखों की ओर ले जाए ॥१२,३.२६॥

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥१२,३.२७॥

जल निश्चित ही प्रभावशाली, प्रशंसनीय, बलवर्द्धक, पवित्र, अमृततुल्य और प्रभुस्वरूप है । हे जल ! आप दम्पती द्वारा डाले गये ओदन को शुद्ध करते हुए पकाएँ ॥१२,३.२७॥

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥१२,३.२८॥

प्राण और अपान वायु सहित ओषधियुक्त जल बिन्दु पृथ्वी को सिंचित करते हैं और सुन्दर वर्ण वाले जीवों में प्रविष्ट होकर, उन्हें शुचिता प्रदान करते हुए उनमें व्याप्त होते हैं ॥१२,३.२८॥

उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥१२,३.२९॥

यह जल तप्तावस्था में युद्ध- सा करता है, शब्द ध्वनि करता है, फेन को उड़ाता है तथा अनेक बुद्बुदों को फेंकता है । हे जल प्रवाहो ! जिस प्रकार स्त्री पति के साथ ऋतुयज्ञ (प्रजनन कर्म के लिए संयुक्त होती है, उसी प्रकार आप

ऋतुयज्ञ के निमित्त चावलों के साथ सम्मिलित हों ॥१२,३.२९॥

उत्थापय सीदतो बुध्न एनान् अद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन् मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥१२,३.३०॥

हे अग्ने ! (कुम्भी) तली में स्थित चावलों को आप ऊपर उठाएँ । जल के साथ ये स्वयं भली प्रकार मिल जाएँ। ये (चारों दिशाओं में जाने वाले) चावले भी मापे जा चुके हैं, अतः जल भी मापा गया है ॥१२,३.३०॥

प्र यछ पर्शुं त्वरया हरौसमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
वासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥१२,३.३१॥

परशु प्रदान करो, शीघ्रता करो, (ओषधियाँ यहाँ लाओ । ओषधियों को नष्ट न करते हुए उन्हें काटें । ये सभी शाक राजा सोम के राज्य में हैं। ओषधियाँ हमारे साथ क्रोध भावना से रहित हों ॥१२,३.३१॥

नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्वस्तु ।

तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥१२,३.३२॥

ओदन (सेवन) के लिए कुशा (आसन) बिछा दें, वह आसन हृदय तथा नेत्रों को प्रिय लगने वाला हो । वहाँ पर सभी देवगण अपनी दैवी शक्तियों के साथ बैठें और इस ओदन को तुओं के अनुरूप सेवन करें ॥१२,३.३२॥

वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोभैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥१२,३.३३॥

हे वनस्पते (वनस्पति से उत्पन्न ओदन) ! इस बिछाये गये आसन पर आप प्रतिष्ठित हों, देवताओं ने आपको अग्निष्टोम में स्वीकार किया है। स्वधिति ने त्वष्टादेव के समान इसे सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है, जो अब पात्रों में दिखाई दे रहा है ॥१२,३.३३॥

षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीछात्स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥१२,३.३४॥

निधिरक्षक यजमान साठ वर्ष तक इस पक्व अन्न से स्वर्ग (या सुख) प्राप्ति की कामना करे । पिता-पुत्र दोनों इसी के सहारे अपना जीवन चलाएँ । हे अग्निदेव ! आप इस (अन्न या यजमानों को स्वर्ग तक गति दें ॥१२,३.३४॥

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद्वासयातः पर्यग्निधानात्॥१२,३.३५॥

हे अन्न ! आप धारणकर्ता हैं, अतः आप पृथ्वी के आधार पर स्थिर हों, आप अच्युत्य को देवशक्तियाँ च्युत न करें। जिनके पुत्र जीवित हैं, ऐसे स्त्री- पुरुष आपको अग्न्याधान से पुष्टि प्रदान करें ॥१२,३.३५॥

सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥१२,३.३६॥

आप स्वर्गादि सभी लोकों को यज्ञ द्वारा जीतकर अपनी सम्पूर्ण मनोकामनाओं की तृप्ति करते हुए आएँ । दम्पती द्वारा करछी और चमस पात्र से ओदन निकाल कर इस एक पात्र में रखा जाए ॥१२,३.३६॥

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद्घृतेन पात्रमभि घारयैतत्।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत
॥१२,३.३७॥

पात्र में घृत डालकर उसे फैलाते हुए घृत से परिपूर्ण पात्र को भरें । हे देवगण ! जैसे दुधारू गौएँ दुग्धपान करने वाले बछड़े को चाहती हुई शब्द करती हैं, वैसे ही तैयार हुए अन्न के प्रति आप प्रसन्नता सूचक शब्द करें ॥१२,३.३७॥

उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिं छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यछान्
॥१२,३.३८॥

हे याजको ! आपने इस लोक में इस (अन्न) को तैयार किया तथा(यज्ञ द्वारा) ऊपर (उच्च लोकों में) फैलाया । यह उस अप्रतिम स्वर्ग में खूब विस्तार पाए, जिसमें महान् सूर्यदेव स्थित हैं । इसे देवगण (या देवपुरुष) ही देवों (देवशक्तियों) के लिए प्रदान करते हैं ॥१२,३.३८॥

यद्यज्जाया पचति त्वत्परःपरः पतिर्वा जाये त्वत्तिरः ।
सं तत्सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम्
॥१२,३.३९॥

हे स्त्री ! आप इस ओदन का पाक करती हैं। यदि आप अपने पति से पहले चली जाएँ और आपके पति बाद में स्वर्ग पहुँचें, तो वहाँ आप दोनों मिल जाएँ। आप दोनों एक ही लोक में साथ-साथ रहें और यह ओदन वहाँ भी आपके साथ रहे ॥१२,३.३९॥

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत्पुत्राः परि ये संबभूवुः । सर्वांस्तामुप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥१२,३.४०॥

इस (नारी या प्रकृति) से उत्पन्न सभी पुत्रों को, जो हमारे आस- पास भूमि की सेवा करते हैं, उन्हें (ओदन) पात्र के निकट बुलाएँ । पुत्र भी इस बात को समझते हुए इस नाभि (केन्द्र या यज्ञ) में आ जाए ॥१२,३.४०॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः । सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीछात्॥१२,३.४१॥

वासदाता ओदन की धाराएँ शहद और घृत मिश्रित हैं। अमरत्व प्रदान करने वाली वे धाराएँ स्वर्ग में केन्द्रीभूत हैं, स्वर्ग उन सबको अपने नियंत्रण में रखें। निधि का संरक्षक

यजमान साठ वर्षों की आयु के पश्चात् इसकी अभिलाषा करे ॥१२,३.४१॥

निधिं निधिपा अभ्येनमिछादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये । अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गान् अरुक्षत्॥१२,३.४२॥

निधि के संरक्षक यजमान दान द्वारा श्रेष्ठ वैभव की अभिलाषा करें । जो दूसरे वैभव रहित हैं वे सम्पदा के अभाव में दरिद्रताग्रस्त रहें । हमारी दान देने की प्रवृत्ति से उपलब्ध हुए, स्वर्गीय सुख ही ऐसे हैं, जो तीन काण्डों (तीन विभागों) से तीन श्रेणी के स्वर्गों से श्रेष्ठ स्तर के हैं ॥१२,३.४२॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद्विदेवं क्रव्याद्पिशाच इह मा प्र पास्त । नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥१२,३.४३॥

मेरे कर्मों के फल में बाधा डालने वाली राक्षसी शक्तियों को अग्निदेव संतप्त करें। क्रव्याद् अग्नि और राक्षसी प्रवृत्तियों में संलग्न लोग हमारा शोषण न करें। इस असुर को हम दूर भगाते हैं, इसे समीप नहीं आने देंगे । आदित्यगण और अंगिरावंशज ऋषि इस दुष्ट को नियंत्रित करें ॥१२,३.४३॥

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम्
॥१२,३.४४॥

हम आदित्यों और अंगिरा गोत्रीय अषियों के लिए घी से मिश्रित शहद निवेदित करते हैं। ज्ञाननिष्ठ मनुष्य के पुण्यमय दोनों हाथ जो अकल्याण से रहित हैं, वे पुण्यशाली हैं। वे इसे स्वर्ग की ओर ले जाएँ ॥१२,३.४४॥

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात्परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत्समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र
॥१२,३.४५॥

जिस दर्शन योग्य काण्ड द्वारा प्रजापति ने फल प्राप्त किया था, उसके श्रेष्ठ भाग को हमने उपलब्ध कर लिया है । इसे घी से सींचें, यह घृत से युक्त भाग हम अङ्गिरा वंशजों का ही है ॥१२,३.४५॥

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान् मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता
पुरा मत्॥१२,३.४६॥

हम सत्य, तप और देवताओं के निमित्त इस ओदनरूपी निधि को समर्पित करते हैं। आपसी कर्म के आदान-प्रदान रूप जुआ में और सभा-समिति में भी यह हमसे दूर न हो, हमें त्याग कर अन्य के पास न जाए ॥१२,३.४६॥

अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत्॥१२,३.४७॥

मैं ही पकाने की क्रिया सम्पन्न कर रहा हूँ और इसे दानादि रूपों में मैं ही प्रदान कर रहा हूँ । हे यज्ञ स्वरूप कर्म ! हमारे यहाँ कुमारावस्था से युक्त दर्शनीय पुत्र उत्पन्न हुआ है । अब हम श्रेष्ठतायुक्त यज्ञान्न का पाचन और दान जैसे श्रेष्ठ कार्यों का शुभारम्भ करते हैं ॥१२,३.४७॥

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन् मित्रैः सममेमान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत्पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥१२,३.४८॥

इस कर्म में कोई दोष नहीं है और न हीं इसका कोई (भिन्न) आधार है । यह स्वजनों के साथ मिलजुल कर भी नहीं जाता। यह रखा हुआ पूर्ण पात्र फिर से पकाने वाले को ही प्राप्त हो जाता है ॥१२,३.४८॥

प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु
॥१२,३.४९॥

हे यजमान ! अतिशय प्रिय कर्म को हम तुम्हारे लिए सम्पन्न करते हैं । जो तुमसे द्वेष करते हैं, ऐसे व्यक्ति नर करूपी अन्धकार को प्राप्त करें। गौएँ, बैल, अन्न, आयुष्य और पुरुषार्थ हमारे निकट आएँ और अपमृत्यु को दूर करें ॥१२,३.४९॥

समग्नयः विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्यातपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव
॥१२,३.५०॥

जो अग्निदेव औषधियों और जल का सेवन करते हैं। उनमें रहते हैं, वे परस्पर एक दूसरे को जानते हैं। ये तथा अन्य अग्नियाँ भी इस कर्म से अवगत हैं । पाककर्ता को देवताओं के तपरूप पुण्य और सुवर्ण आदि ज्योतिर्मय पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥१२,३.५०॥

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।

क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥१२,३.५१॥

मनुष्य को यह चर्म (आच्छादन) अन्यों के सहयोग से प्राप्त है। अन्य पशु भी नग्न नहीं (सुरक्षित हैं। अपने पुरुषार्थ से स्वयं को आच्छादित (संरक्षित) करो और इस अन्न के मुख को भी वसन (वस्त्र) से ढको ॥१२,३.५१॥

यदक्षेषु वदा यत्समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि सम्वसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥१२,३.५२॥

(धन की लालसा से) आपने जुआ आदि खेलों अथवा सभा में जो असत्य भाषण किया है, उन अपने कषाय-कल्मषों को उसी स्थान में रख दें, समानता (ताने-बाने वाला वस्त्र धारण करें ॥१२,३.५२॥

वर्षं वनुष्वापि गछ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥१२,३.५३॥

(हे यज्ञान्न) देवों के समीप जाएँ, वर्षा प्राप्त करें, त्वचा (पृथ्वी या प्राणियों के रक्षक आवरण) के चारों ओर (यज्ञ का) धूम्र

उड़ाएँ । विश्व में विस्तृत हों, घृत (तेज) से युक्त होने की इच्छा वाले आप पुनः इस लोक को प्राप्त हों ॥१२,३.५३॥

तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन् अन्यवर्णाम् ।
अपाजैत्कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥१२,३.५४॥

यह अन्न स्वर्गलोक में अपने स्वरूप को अनेक आकार का गढ़ने में सक्षम है। अन्य वर्ण वालों को भी आत्मवत् ही जानता है । कालिमा को दूर करता है और तेजस्विता को शुद्ध बनाता है । उसका जो लोहित (सुदृढ़ या लाल वर्ण का) अंश है, उसे अग्नि में होमा जाता है ॥१२,३.५४॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥१२,३.५५॥

हम आपको पूर्व दिशा, अधिपति अग्निदेव, संरक्षणकर्ता असित और बाणधारी आदित्य के लिए प्रदान करते हैं। आप हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसका संरक्षण करें। इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में वृद्धावस्था पर्यन्त

उपलब्ध कराते रहें और हमारी वृद्धावस्था इसे मृत्यु तक पहुँचाए। इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥१२,३.५५॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥१२,३.५६॥

हम आपको दक्षिण दिशा, अधिपति इन्द्रदेव रक्षणकर्ता तिरश्चिराजी नामक सर्प और बाणधारी यम के लिए प्रदान करते हैं, आप हमारे यहाँ से जाने तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में जीर्णावस्था तक तथा वृद्धावस्था से मृत्यु तक पहुँचाएँ। इस पके हुए अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥१२,३.५६॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥१२,३.५७॥

हम आपको पश्चिम दिशा, अधिपति वरुण, रक्षणकर्ता पृदाकु नामक सर्प और वरुणधारी अन्न के लिए प्रदान करते हैं। आप हमारे यहाँ से प्रस्थान तक इसका संरक्षण करें। इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में वृद्धावस्था पर्यन्त उपलब्ध कराते रहें और वृद्धावस्था इसे मृत्यु तक पहुँचाए। इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥१२,३.५७॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥१२,३.५८॥

हम आपको उत्तर दिशा, अधिपति सोम, संरक्षणकर्ता स्वज नामक सर्प और अशनि के लिए प्रदान करते हैं। आप हमारे यहाँ से जाने तक इसका संरक्षण करें। इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप वृद्धावस्था तक प्राप्त कराते रहें और वृद्धावस्था इसे मृत्यु को सौंप दें। इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥१२,३.५८॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।

एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥१२,३.५९॥

हम आपको ध्रुव दिशा, अधिपति विष्णु, संरक्षणकर्ता कल्माषग्रीव नामक सर्प और इषुमती ओषधियों के लिए प्रदान करते हैं। आप हमारे यहाँ से गमनकाल तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप जीर्णावस्था तक प्राप्त कराएँ । जीर्णावस्था इसे मृत्यु को समर्पित करे। इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥१२,३.५९॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥१२,३.६०॥

हम आपको ऊर्ध्व दिशा, अधिपति बृहस्पति, संरक्षक श्वित्र नामक सर्प और इधुवान् वर्षा के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक संरक्षण करते रहें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप बुढ़ापे तक पहुँचाएँ,

बुढ़ापा इसे मृत्यु को समर्पित करे । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥१२,३.६०॥

॥अथर्ववेद – द्वादश काण्डम्॥

सूक्त ४- वशा गौ सूक्त

गोदान का वर्णन, वशा गौ का वर्णन, तथा नारद की स्तुति

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत्प्रजावदपत्यवत्॥१२,४.१॥

हरेक सद्गृहस्थ 'दान देता हूँ' ऐसा ही सदैव कहे । दान के अनुकूल भावना भी रखे । याचक ब्राह्मणों को वशा का दान करे । यह दान, दाता को प्रजा और सन्तति प्रदान करने वाला है ॥१२,४.१॥

प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥१२,४.२॥

जो मनुष्य, माँगने वाले ऋषिपुत्रों को देवताओं की गौ (वशा-विद्या) नहीं देते, वे अपनी प्रजा को ही बेचते हैं। और पशुओं से रहित होकर अपयश को प्राप्त होते हैं ॥१२,४.२॥

कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥१२,४.३॥

वशा की सींग (वशा विद्या का पैनापन) टूटने से उस (अदानी व्यक्ति के निकटवर्ती (साधन या व्यक्ति) नष्ट होते हैं। लँगड़ी होने से उन्हें गड्ढे में गिरना पड़ता है, बण्डी (बिना पूँछ की या विकल) होने से घर जल जाते हैं, तथा कानी (एक आँख खराब होने से अपनी ही सम्पदा नष्ट होती है ॥१२,४.३॥

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥१२,४.४॥

गौ के गोबर से रक्त ज्वर प्रकट होकर कृपण स्वामी का विनाश करता है। इसी कारण से वशा को दुर्वमनीय (शक्ति से दबायीं न जा सकने वाली) कहा गया है ॥१२,४.४॥

पदोरस्या अधिष्ठानाद्विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात्सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥१२,४.५॥

(इस रुष्ट) गौ के पैर रखने के स्थान में विक्लिन्दु नामक रोग फैलता है, जिसे गौ सँधती है, ऐसे (गौ के स्वामी) बिना

ख्याति को प्राप्त हुए ही क्षीण होकर विनष्ट हो जाते हैं ॥१२,४.५॥

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥१२,४.६॥

जो गौ के कानों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मानो देवताओं पर प्रहार करते हैं । गौ पर परिचय चिह्न बनाने वाले गोपालकों का धन क्षीण हो जाता है ॥१२,४.६॥

यदस्याः कस्मै चिद्भोगाय बालान् कश्चित्प्रकृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥१२,४.७॥

जो किसी साज-सज्जा के लिए इस गौ के बालों का कर्तन करते हैं, इस अपराध कर्म से उनकी सन्ताने मृत्यु को प्राप्त होती हैं और भेड़िया, बच्चों पर आघात करता है ॥१२,४.७॥

यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत्।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात्॥१२,४.८॥

यदि गोपति की उपस्थिति में कौवा, गौ के बालों को नोचता है, तो इससे उसकी संतानें मृत्यु को प्राप्त होती हैं और क्षयरोग उसे सहजरूप में ग्रसित करता है ॥१२,४.८॥

यदस्याः पल्पूलनं शकृद्वासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥१२,४.९॥

यदि गौ की परिचारिका, गौ का गोबर और मूत्र इधर-उधर फेंकती है, तो उस पापकर्म से गोपति का रूप विकृत हो जाता है ॥१२,४.९॥

जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद्ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥१२,४.१०॥

जो वशा उत्पन्न होती है, वह मात्र ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानियों और देवताओं के लिए ही उत्पन्न होती है, अतएव इसे ज्ञाननिष्ठ ब्रह्मकर्म में संलग्न लोगों को दानस्वरूप देना उपयुक्त है, ऐसा विद्वानों का कथन है ॥१२,४.१०॥

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥१२,४.११॥

ब्रह्मनिष्ठों के माँगने पर उन्हें गौ प्रदान न करके, जो 'अपनी प्रिय है' ऐसा कहते हुए अपने ही पास रखता है, उसका यह कृत्य ब्रह्मनिष्ठों पर अत्याचार के समान ही है; क्योंकि देवों ने उसे उनके लिए ही निर्मित किया है ॥१२,४.११॥

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥१२,४.१२॥

जो लोग लोकहित को दृष्टिगत रखने वाले याचक त्रषिपुत्रों को देवों की गौ दानस्वरूप नहीं देते । उनके ऊपर ब्राह्मणों के कोप और देवों के आघात बरसते हैं ॥१२,४.१२॥

यो अस्य स्याद्वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥१२,४.१३॥

यदि कोई भोग सामग्री चाहता है, तो वह वशा (ब्रह्म विद्या) से नहीं, किसी दूसरी विधि से प्राप्त करे; क्योंकि जो वशा याचना करने पर भी नहीं दी जाती, वह गौ ही उस मनुष्य (गोपति) के विनाश का कारण बनती है ॥१२,४.१३॥

यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदछायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥१२,४.१४॥

जैसे किसी की सुरक्षित निधि होती है, वैसे ही यह वशा (गाय) ब्राह्मणों की है। कहीं किसी के भी गृह में उत्पन्न होने पर उसके पास ब्राह्मण लोग याचक भाव से पहुँचते हैं ॥१२,४.१४॥

स्वमेतदछायन्ति यद्वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनान् अन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥१२,४.१५॥

यदि ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ) गौ के समीप आते हैं, तो वे अपनी सम्पत्ति के पास ही आते हैं । इस गौ को रोकना (न देना) मानो इन्हें (ब्राह्मणों को दूसरे अर्थ में व्यथित करना ही है ॥१२,४.१५॥

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान् नारद ब्राह्मणास्तर्ह्योष्याः ॥१२,४.१६॥

तीन कालों (वर्षों या जीवन के अंशों) तक, जब तक वशा की पहचान न हो, तब तक उसे गोपति (इन्द्रियों का स्वामी) विचरण करने दें । हे नारद ! वशा (प्रतिभा या विद्या) को पहचान लेने पर उसके लिए ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति अथवा अनुशासन) खोजकर उसे सौंप दिया जाए ॥१२,४.१६॥

य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥१२,४.१७॥

जो देवों की स्थायी निधि (सुरक्षित निधि) रूप वशा को अवशा (न देने योग्य कहते हैं, तो भव और शर्व ये दोनों देव उस पर पराक्रमी प्रहार स्वरूप बाण चलाते हैं ॥१२,४.१७॥

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनान् उत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद्वशाम् ॥१२,४.१८॥

जो गोपालक उसके ऊध (थन) और स्तनों को नहीं जानते, वे भी दानस्वरूप गौ को देने में सक्षम हुए, तो . वह वशा (गाय) उन्हें पुण्यफल के साथ पर्याप्त दूध का अभीष्ट फल देती है ॥१२,४.१८॥

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥१२,४.१९॥

जो याचना किये जाने पर भी ब्राह्मणों को नहीं देते, उनके घर में यह गौ दुर्दम्य (नियन्त्रणरहित) होकर वास करती है । जो इसे न देकर अपने पास ही रखना चाहते हैं, उनके अभीष्ट पूर्ण नहीं होते ॥१२,४.१९॥

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥१२,४.२०॥

ब्राह्मण का रूप धारण करके, देव-शक्तियाँ ही वशा की याचना करती हैं। अत: दानस्वरूप गौओं को न देने वाले मनुष्य देवों के कोपभाजन बनते हैं ॥१२,४.२०॥

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद्वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन् निप्रियायते ॥१२,४.२१॥

देवताओं की सुरक्षित निधि रूप में रखे गये भाग (वशा) को जो मनुष्य अपना प्रिय मानकर ब्राह्मणों को दान स्वरूप नहीं देता, तो उसे पशुओं का भी कोप भाजन बनना पड़ता है ॥१२,४.२१॥

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्न् एवं ह विदुषो वशा ॥१२,४.२२॥

गोपति के पास सैकड़ों अन्य ब्राह्मण भी यदि वशा की याचना करें, तो भी वशा विद्वान् की होती है, ऐसा देवों का कथन है ॥१२,४.२२॥

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद्वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥१२,४.२३॥

जो मनुष्य इस प्रकार विद्वान् को गौ न देकर; दूसरे अपात्र को गोदान करता है, उसके लिए उसके स्थान में समस्त देवों के साथ-साथ पृथ्वी भी कष्टदायी हो जाती है ॥१२,४.२३॥

देवा वशामयाचन् यस्मिन्न् अग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान् नारदः सह देवैरुदाजत ॥१२,४.२४॥

जिसके यहाँ बशा का जन्म होता है, उससे देवता गौ की माँग करते हैं। नारद ने यह जान लिया कि देवों को इसका दान दिये जाने से (गौ और देवताओं) सबकी प्रगति होती है ॥१२,४.२४॥

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥१२,४.२५॥

ब्राह्मणों द्वारा माँग किये जाने पर भी, जो वशा (गाय) को अपना प्रिय मानकर अपने पास रखता है, वह वशी उस मनुष्य को सन्तति के सौभाग्य से रहित और पशुधन से भी क्षीण करती है ॥१२,४.२५॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत्॥१२,४.२६॥

ब्राह्मण लोग अग्नि, सोम, मित्र, वरुण और काम आदि देवों के निमित्त वशा की याचना करते हैं, अपने लिए नहीं, इसलिए यह दान न किये जाने पर मनुष्य उन देवों को ही अपमानित करता है ॥१२,४.२६॥

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद्गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत्॥१२,४.२७॥

जब तक गोपति (इन्द्रियों का स्वामी स्वयं ऋचाएँ नहीं सुनता, तब तक उसकी गौओं (इन्द्रियों के बीच वशी (प्रतिभा या विद्या) विचरण करती रहे, परन्तु ऋचा सुनने (ज्ञान होने के बाद उसे दानस्वरूप दे देना चाहिए ॥१२,४.२७॥

यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत्।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥१२,४.२८॥

जो गोपालक मन्त्रघोष सुनकर भी अपनी गौओं के बीच दानस्वरूप दी जाने वाली गौ को चराता है, देवगण उसके ऊपर क्रोधित होकर उसकी आयु और सम्पदा को विनष्ट कर देते हैं ॥१२,४.२८॥

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥१२,४.२९॥

वशा अनेक स्थानों में विचरणशील होती हुई देवों की सुरक्षित निधिस्वरूपा ही है । जब वह अपने स्थान पर जाने की इच्छुक होती है, तो विभिन्न प्रकार के रूपों को प्रकट करती है ॥१२,४.२९॥

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्चाय कृणुते मनः ॥१२,४.३०॥

जब वशा अपने निवास स्थान पर जाने की इच्छुक होती हैं, तब वह अपने मनोभावों को प्रदर्शित करती हैं। ब्राह्मणों द्वारा याचना के लिए वह गौ अपने मन में संकल्पित होती है ॥१२,४.३०॥

मनसा सं कल्पयति तद्देवामपि गछति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥१२,४.३१॥

उस वशा (गाय) के मानसिक संकल्प किये जाने पर वे संकल्प देवों तक पहुँचते हैं। इसके बाद ही ब्राह्मण लोग गौ की याचना के लिए आगमन करते हैं ॥१२,४.३१॥

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥१२,४.३२॥

स्वधारूप तर्पण कृत्य से पितरों की तृप्ति तथा यज्ञ और वशादान से देवों की संतुष्टि हो जाने पर क्षत्रिय गाय की माता (जन्मदात्री) का कोपभाजन नहीं बनता ॥१२,४.३२॥

वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः ।
तस्या आहुरनर्पणं यद्ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥१२,४.३३॥

वशा (गाय) को क्षत्रियों की माता कहा गया हैं । जो वशा को ब्राह्मणों के लिए दानस्वरूप प्रदान करते हैं, वस्तुत: वह उनका दान नहीं है, क्योंकि गौ तो ब्राह्मण की ही सुरक्षित निधि कही गयी है ॥१२,४.३३॥

यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत्स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत्॥१२,४.३४॥

जिस प्रकार सुवा में लिया हुआ घी अग्नि को न समर्पित करना अपराध है, उसी प्रकार ब्राह्मणों को वशा (गाय) दानस्वरूप न देने वाले को अपराधी माना जाता है ॥१२,४.३४॥

पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥१२,४.३५॥

पुरोडाशरूपी वत्स से उत्तम दूध देने (दुहाने) वाली वशा; इस लोक में इस दानीं यजमान के समीप ही रहती है, वह गौ इस दाता की समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करती है ॥१२,४.३५॥

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥१२,४.३६॥

वशा दान करने वाले दाता की सम्पूर्ण कामनाएँ यम (अनुशासन) के राज्य में पूर्ण होती हैं, परंतु याचना करने पर भी दान न देने वाले को नरकलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा विद्वज्जनों का अभिमत है ॥१२,४.३६॥

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥१२,४.३७॥

सृजनशील वशा (प्रतिभा), गोपति (इन्द्रियों के स्वामी अविवेकी व्यक्ति) के लिए क्रोधित होकर विचरण करती है । वह अभिशाप देती है कि मुझे वन्ध्या(अनुत्पादक) स्थिति में रखने वाला मृत्युपाश से आबद्ध हो ॥१२,४.३७॥

यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥१२,४.३८॥

जो वशा गौ को गर्भपातिनी (वन्ध्या) मानकर उसे अपने घर में पकाता है, बृहस्पति (विद्या के अधिष्ठाता) देव उसके पुत्र और पौत्रों से भिक्षा मँगवाते हैं ॥१२,४.३८॥

महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥१२,४.३९॥

यह गौ (वशा) गौओं (इन्द्रियों) के बीच चरती हुई भी अत्यधिक सन्ताप देती है, मानो दान न देने वाले गोरक्षक के लिए यह दूधरूपी विष देती है ॥१२,४.३९॥

प्रियं पशूनां भवति यद्ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत्प्रियं यद्देवत्रा हविः स्यात्॥१२,४.४०॥

जो वशा ब्राह्मणों को दानस्वरूप दी जाती है, वह शेष पशुओं के लिए भी कल्याणकारक होती है। इसलिए वशा को देवताओं के लिए दी गई आहुति ही प्रिय है ॥१२,४.४०॥

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।

तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥१२,४.४१॥

जिस समय वशा को देवों ने यज्ञ से बनाया (संकल्पित किया) उसी समय अधिक घृतवती और विशालकाय वशा को नारद ने अनुभव (स्वीकार) किया ॥१२,४.४१॥

तां देवा अमीमांसन्त वशेया३ अवशेति ।
तामब्रवीन् नारद एषा वशानां वशतमेति ॥१२,४.४२॥

उस सम्बन्ध में देवों ने विचार विनिमय किया कि यह गौ स्वामी के वश में रहने योग्य नहीं है । तब नारद ने वशो को शेष गौओं की अपेक्षा सज्ञ नियन्त्रित रहने वाली कहा ॥१२,४.४२॥

कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृछामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥१२,४.४३॥

हे ऋषि नारद मनुष्यों के यहाँ उत्पन्न होने वाली ऐसी कितनी गौएँ हैं, जिनके सम्बंध में आपको ज्ञान है ? आप विद्वान् पुरुष हैं, अत: हम आपसे पूछना चाहते हैं कि जो ब्राह्मण से भिन्न है, वह किसका सेवन न करे ? ॥१२,४.४३॥

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥१२,४.४४॥

(नारद का उत्तर) हे बृहस्पते ! ऐश्वर्य की कामना करने वाला वह व्यक्ति अब्राह्मण विलिप्ती (विशिष्ट प्रयोजनों में लिप्ती, सूतवशा (प्रेरक वशा) तथा वशा(वशा के इन तीनों स्वरूपों) का सेवन न करे ॥१२,४.४४॥

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत्॥१२,४.४५॥

हे ऋषि नारद ! आपके लिए वन्दन है । यह वशा (गाय) विद्वान् पुरुष की प्रार्थना के अनुकूल ही हैं, परन्तु इन गौओं में कौन सी अतिभयंकर है, जिसे दानस्वरूष न देने पर पराभव होता है ॥१२,४.४५॥

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥१२,४.४६॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो ब्राह्मण से भिन्न हैं, वे यदि ऐश्वर्य समृद्धि की कामना करते हैं, तो वे विलिप्ती, सूतवशा, सर्ववशा, इन तीनों प्रकार की गौओं के सेवन से बचाव करें ॥१२,४.४६॥

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद्ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥१२,४.४७॥

विलिप्ती, सूतवशा और वशा ये गौओं की तीन श्रेणियाँ (प्रजातियाँ) हैं, इन्हें जो ब्राह्मणों को दानस्वरूप देते हैं, वे प्रजापति के क्षोभ से सुरक्षित रहते हैं ॥१२,४.४७॥

एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥१२,४.४८॥

"हे ब्रह्म ज्ञानियो ! यह (वशा) आपकी हवि (आपके लिए समर्पित) है ।" ब्राह्मण द्वारा याचना किये जाने पर गोपति ऐसा उच्चारित करे । अदानी के घर में वशा अत्यंत भयंकर हो जाती है ॥१२,४.४८॥

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद्वै स पराभवत्॥१२,४.४९॥

क्रोधित देवों ने, वशा से कहा, "इसने दान नहीं दिया, ऋचाओं (प्रदत्तज्ञान) में भेद उत्पन्न किया", इसलिए इसका पराभव हुआ ॥१२,४.४९॥

उतैनां भेदो नाददाद्वशामिन्द्रेण याचितः ।

तस्मात्तं देवा आगसोऽवृश्चन्न् अहमुत्तरे ॥१२,४.५०॥

इन्द्रदेव द्वारा वशा की याचना करने पर भी जो नहीं देता, उसके राज्य में भेद उत्पन्न होता है। उसके पाप के दण्डस्वरूप देवता उसे अहंकार के घेरे में डालकर विनष्ट करते हैं ॥१२,४.५०॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥१२,४.५१॥

जो लोग, गोपति को (मर्यादा से परे हटाकर 'मत दो' ऐसी सलाह देते हैं, वे दुर्बुद्धि के कारण इन्द्रदेव के कोप द्वारा विनष्ट होते हैं ॥१२,४.५१॥

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतीं परि यन्त्यचित्त्या ॥१२,४.५२॥

जो गो-रक्षक के पास जाकर कहते हैं कि दानरूप में गौ को न दें, वे अपनी कुमति के कारण रुद्रदेव के फेंके हुए शस्त्र से विनष्ट होते हैं ॥१२,४.५२॥

यदि हुतं यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।

देवान्त्सब्राह्मणान् ऋत्वा जिह्मो लोकान् निर्ऋछति ॥१२,४.५३॥

हुत (यज्ञाहुतिरूप या दान में दी गयी) या अहुत (न दी गयी) वशा (विद्या अथवा प्रतिभा) को यदि (कोई व्यक्ति अपने घर में (सीमित स्वार्थ के लिए परिपक्व करता है, तो वह कुटिल होकर ब्राह्मणों और देवों का अपराधी बनकर लोकों (श्रेष्ठ लोकों या स्तरों) से पतित हो जाता है ॥१२,४.५३॥

॥अथर्ववेद – द्वादश काण्डम्॥

सूक्त ५ – ब्रह्मगवी सूक्त

ब्रह्मगवी का वर्णन

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्ता र्ते श्रिता ॥१२,५.१॥

तपश्चर्या द्वारा उत्पन्न की गई सत्य में आश्रययुक्त यह (ब्रह्मगवी) ब्राह्मण द्वारा जानी या पायी जाने वाली है ॥१२,५.१॥

सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥१२,५.२॥

यह सत्य से अच्छादित, श्री- सम्पदा से परिपूर्ण और यशस्विता से चारों ओर से घिरी(सम्पन्न) रहती है ॥१२,५.२॥

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥१२,५.३॥

यह अपनी धारणा शक्ति से सुरक्षित हुई, श्रद्धा भावना से सम्पन्न, दीक्षाव्रत से संरक्षित और यज्ञ में प्रतिष्ठित रहती है,

(बाह्मणेतर) क्षत्रिय (आदि) का इसकी ओर देखना (पानेकी लालसा करना) मृत्यु है ॥१२,५.३॥

ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥१२,५.४॥

इस गौ के द्वारा ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है, ब्राह्मण ही इस गौ का स्वामी है ॥१२,५.४॥

तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥१२,५.५॥

ब्राह्मण की गौ के अपहरणकर्ता और ब्रह्मज्ञानी को व्यथा पहुँचाने वाले क्षत्रिय की लक्ष्मी, वीर्य और प्रिय मधुर वाणी साथ छोड़ देती है ॥१२,५.५-१२,५.६॥

अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुन्या लक्ष्मीः ॥१२,५.६॥

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक्चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥१२,५.७॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥१२,५.८॥

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥१२,५.९॥

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥१२,५.१०॥

तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥१२,५.११॥

ओज, तेज, शत्रुओं को दबाने की सामर्थ्य, बल, वाणी, इन्द्रिय शक्ति, लक्ष्मी, धर्म, वेद, शौर्यशक्ति, राष्ट्र, प्रजाजन, तेज, यश, पराक्रम, न, आयुष्य, रूप, नाम, यशस्विती, प्राण, अपान, आँखें, कान, दूध, रस, अन्न को पचाने की अग्नि (ऊर्जा), ऋत, सत्य, वेद विहित याग आदि इष्ट पूर्त (स्मृति विहित कूप तटाक आदि) प्रजा और पशु। उपर्युक्त ये सभी (चौंतीस) पदार्थ ब्राह्मण की गौ को छीनने वाले और संहार करने वाले क्षत्रिय को छोड़ देते हैं ॥१२,५.७-१२,५.११॥

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात्कृत्या कूल्बजमावृता ॥१२,५.१२॥

यह ब्रह्मगवी भयानक, विषैली, प्रत्यक्ष आघात करने वाली तथा संहारक कृत्यास्वरूप हो जाती है ॥१२,५.१२॥

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥१२,५.१३॥

इस गौ में सभी प्रकार की भयंकरता और मृत्यु की सभी सम्भावनाएँ समाविष्ट हैं ॥१२,५.१३॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥१२,५.१४॥

इसमें सभी क्रूरतापूर्ण कृत्य और सभी पुरुषों के वध विद्यमान हैं ॥१२,५.१४॥

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पद्वीष आ द्यति ॥११२,५.५॥

ब्राह्मण से छीनी गई यह ब्रह्मगवी, ब्रह्मघाती और देवताओं के शत्रु को मृत्यु के पाश में बाँध देती है ॥१२,५.१५॥

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥१२,५.१६॥

ब्राह्मण की आयु का ह्रास करने वालों के लिए, क्षयकारी यह गौ सैकड़ों प्रकार से संहार करने वाली (अस्त्र) हो जाती है ॥१२,५.१६॥

तस्माद्वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥१२,५.१७॥

इसलिए ज्ञानी मनुष्यों को समझना चाहिए कि ब्राह्मण की गौ दबाने योग्य नहीं है ॥१२,५.१७॥

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥१२,५.१८॥

जब वह दौड़ती है, तब वज्र के समान बन जाती है और जब उठती है, तो आग के समान ऊपर को गमन करती है ॥१२,५.१८॥

हेतिः शफान् उत्खिदन्ती महादेवोऽपेक्षमाणा ॥१२,५.१९॥

वह खुरों को पटकती हुई हथियार के समान और दृष्टि डालती हुई संहारकदेव रुद्र के समान होती है ॥१२,५.१९॥

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥१२,५.२०॥

वह देखती हुई छुरे की धार के समान तीक्ष्ण वज्ररूप होती है और शब्द करने पर गरजती प्रतीत होती है ॥१२,५.२०॥

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुछं पर्यस्यन्ती ॥१२,५.२१॥

हिंकार शब्द करती हुई मृत्युरूप और पूँछ को चारों ओर घुमाती हुई उग्रदेव स्वरूप भयानक होती है ॥१२,५.२१॥

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥१२,५.२२॥

वह कानों को हिलाती हुई, सब प्रकार की आयु को क्षीण करने वाली और मूत्र विसर्जन क्रिया के साथ क्षय रोग विस्तारित करने वाली बनती है ॥१२,५.२२॥

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥१२,५.२३॥

दुही जाती हुई यह गौ मारक शस्त्ररूप होती है और दुही जाने के बाद सिर वेदना स्वरूपा होती है ॥१२,५.२३॥

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥१२,५.२४॥

समीप खड़ी होने पर संहारक और स्पर्श करने पर द्वन्द्व – संग्राम करने वाले वैरी के समान होती है ॥१२,५.२४॥

शरव्या मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥१२,५.२५॥

मुँह में बाँधी जाने पर बाणों के समान और ताड़ित किए जाने पर महाविनाशकारिणी होती है ॥१२,५.२५॥

अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥१२,५.२६॥

बैठती हुई भयानक विषरूपा और बैठी होने पर साक्षात् मृत्युरूप अन्धकार के तुल्य होती है ॥१२,५.२६॥

अनुगच्छन्ती प्राणान् उप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥१२,५.२७॥

इस प्रकार की यह ब्रह्मगवी (ब्राह्मण की गाय) ब्राह्मण को नुकसान पहुँचाने वाले का अनुगमन करती हुई, उसके प्राणों का संहार करती है ॥१२,५.२७॥

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥१२,५.२८॥

ब्राह्मण से छीनी हुई इस गौ को काट देने पर पुत्र-पौत्रादि का विभाजन करा देती है ॥१२,५.२८॥

देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥१२,५.२९॥

चुराई जाते समय यह देवों का अस्त्र और हरण होने के बाद विपत्तिरूपा होती है ॥१२,५.२९॥

पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥१२,५.३०॥

अधीन रखने पर पापरूपा और तिरस्कृत होने पर कठोरतामयी बनती है ॥१२,५.३०॥

विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥१२,५.३१॥

कष्टमयी होने पर विषरूपा और सताये जाने पर तक्मा (ज्वर) के समान होती है ॥१२,५.३१॥

अघं प्रच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ॥१२,५.३२॥

पकाये जाते समय पापरूपा और पक जाने के बाद दुष्ट (बु) स्वप्न के समान दुःखदायी होती है ॥१२,५.३२॥

मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥१२,५.३३॥

यह ब्रह्मगवी घुमायी जाने पर मूल को उखाड़ने वाली और परोसी जाने पर विनाशकारिणी होती है ॥१२,५.३३॥

असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥१२,५.३४॥

गन्ध द्वारा मूर्छित करने वाली, उठाई जाने पर शोकप्रदा और उठाई न जाने पर साँप के समान होती है ॥१२,५.३४॥

अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥१२,५.३५॥

पास में ली गई वह विपत्ति स्वरूपा और समीप रखी हुई पराभवकारी होती है ॥१२,५.३५॥

शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥१२,५.३६॥

वह पीसी जाती हुई क्रोधित रुद्रदेव के समान और पिसी हुई (पीसे जाने के बाद) सुखनाशक होती है ॥१२,५.३६॥

अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥१२,५.३७॥

वह खाई जाती हुई दरिद्ररूपा और भक्षण किये जाने पर दुर्गतिकारिणी पापदेवी निति के समान है ॥१२,५.३७॥

अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥१२,५.३८॥

प्राशन की गई ब्राह्मण की गौ ब्रह्मघाती को इस लोक और परलोक दोनों से ही पृथक् कर देती है ॥१२,५.३८॥

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥१२,५.३९॥

उसका आनन (ले जाना-संहार करना) कृत्या के समान, आशसन (काटना) आयुध के समान तथा अर्धपक्व गोबर मिला चारा विनाशकारी होता है ॥१२,५.३९॥

अस्वगता परिहृणुता ॥१२,५.४०॥

अपहरण की गई धेनु अपने नियंत्रण में नहीं रहती अर्थात् घातक होती है ॥१२,५.४०॥

अग्निः क्रव्याद्भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥१२,५.४१॥

ब्रह्मगवी क्रव्याद् (मांस भक्षक) अग्नि बनकर ब्रह्मघाती में प्रविष्ट होकर उसका भक्षण कर डालती है ॥१२,५.४१॥

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥१२,५.४२॥

इसके (उत्पीड़क के) सभी अंग-प्रत्यंगों और जोड़ों को काट डालती है ॥१२,५.४२॥

छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥१२,५.४३॥

इस (उत्पीड़की के पिता से सम्बंधित बंधुओं का छेदन और मातृपक्ष के बन्धुओं को पराभूत करती है ॥१२,५.४३॥

विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वान् अपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥१२,५.४४॥

क्षत्रिय द्वारा वापस न की गई ब्रह्मगवी ब्रह्मघाती क्षत्रिय के सभी विवाहित और सजातीय बन्धुओं को नष्ट कर देती है ॥१२,५.४४॥

अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥१२,५.४५॥

वह इसे निवासरहित, परतन्त्र और सन्ततिहीन कर देती है, जिससे यह (ब्रह्मघाती) सहायता से विहीन होकर विनाश को प्राप्त होता है ॥१२,५.४५॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥१२,५.४६॥

जो क्षत्रिय ज्ञानी ब्राह्मण की इस गौ को अपहृत करता है (उसकी यही दुर्दशा होती है) ॥१२,५.४६॥

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥१२,५.४७॥

उस (ब्रह्मघाती) दुष्ट के निधन होने पर गीध शीघ्र ही कोलाहल मचाते हैं ॥१२,५.४७॥

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥१२,५.४८॥

केशों को बिखेरकर स्त्रियाँ शीघ्र ही उस (दुष्टों को भस्मीभूत करने वाली चिता के समीप चक्कर काटती हैं। और हाथों से वक्षस्थल को पीटती हुई अश्रुपात करती हैं ॥१२,५.४८॥

क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥१२,५.४९॥

उनके घरों में शीघ्र ही भेड़िये अपने नेत्र घुमाने (शब्द करने लगते हैं ॥१२,५.४९॥

क्षिप्रं वै तस्य पृछन्ति यत्तदासी३ इदं नु ता३ इति ॥१२,५.५०॥

शीघ्र ही उसके सम्बन्ध में पुरुष लोग पूछते हैं कि उसका जो स्वरूप था, क्या यह वहीं है ॥१२,५.५०॥

छिन्ध्या छिन्धि प्र छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥१२,५.५१॥

हे ब्रह्मगवी ! आप इस अपहरणकर्ता को काट डालें और टुकड़े-टुकड़े कर डालें । आप इसका समूल नाश करें ॥१२,५.५१॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥१२,५.५२॥

हे आङ्गिरसि (अङ्गिरस की शक्ति) ! आप ब्राह्मण की धेनु के अपहरणकर्ता (ब्रह्मज्यों का संहार करें ॥१२,५.५२॥

वैश्वदेवी ह्युच्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥१२,५.५३॥

(हे ब्रह्मगवि !) आप समस्त देवों की संहारकशक्ति (कृत्या) विनाशकशक्ति (कूल्बज) हैं, ऐसा आपके सम्बन्ध में कहा गया है ॥१२,५.५३॥

ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥१२,५.५४॥

आप मन्त्ररूपी वज्रास्त्र से भस्मीभूत करने वाली तथा भली प्रकार भस्म करने वाली शक्तिं हैं ॥१२,५.५४॥

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥१२,५.५५॥

आप छुरे के समान तीक्ष्ण बनकर तथा उसकी मृत्युरूपा बनकर प्रहार करें ॥१२,५.५५॥

आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥१२,५.५६॥

आप अपहरणकर्ता से तेजस्विता, अभीष्टों की पूर्णता और सभी आशीषों को छीन लेती हैं ॥१२,५.५६॥

आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन् प्र यछसि ॥१२,५.५७॥

उस ब्रह्मघाती को अल्पायु करने के लिए आप पकड़कर परलोक की ओर भेजती हैं ॥१२,५.५७॥

अघ्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥१२,५.५८॥

हे अघ्ये (वधरहित गौ) ! आप ब्राह्मण के अभिशाप से ब्रह्मघाती के लिए पैरों की बेड़ीरूपा हैं ॥१२,५.५८॥

मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥१२,५.५९॥

आप अखरूप बाणों के समूह को प्राप्त करती हुई, उसके पापों के कारण अघविषा (पापरूपा) बनें ॥१२,५.५९॥

अघ्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥१२,५.६०॥

हे अघ्ये (वधरहित गौ) ! आप उस ब्रह्मघाती, पापी, देवविरोधी, दानविहीन अपराधी का सिर काट लें ॥१२,५.६०॥

त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥१२,५.६१॥

आपके द्वारा मारे गये नष्ट-भ्रष्ट हुए दुर्बुद्धिग्रस्त शत्रु को अग्निदेव भस्मीभूत करें ॥१२,५.६१॥

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥१२,५.६२॥

हे अघ्ये ! आप ब्रह्मघाती को काटें, अत्यधिक काटें, भली प्रकार काटें। जलाएँ, अधिक जलाएँ, भली प्रकार जलाएँ ॥१२,५.६२॥

ब्रह्मज्यं देव्यघ्य आ मूलादनुसंदह ॥१२,५.६३॥

हे वधरहित दिव्यस्वरूपा गौ ! आप ब्राह्मण के प्रति हिंसक भाव रखने वाले को समूल भस्म कर डालें ॥१२,५.६३॥

यथायाद्यमसादनात्पापलोकान् परावतः ॥१२,५.६४॥

एवा त्वं देव्यघ्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥१२,५.६५॥

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥१२,५.६६॥

प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥१२,५.६७॥

हे वधरहित गौ ! आप पापकर्मी, देवविरोधी, कर्तव्यपूर्ति में विघ्नकारी, ब्रह्मघाती के सिर और कन्धों को सैंकड़ों नोंकवाले छुरे के समान धाराओं से युक्त तीक्ष्ण वज्रास्त्र से विच्छिन्न करें, जिससे यह यमगृह से अतिदूर के पापलोकों को प्राप्त करे ॥१२,५.६४-१२,५.६७॥

लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥१२,५.६८॥

(हे ब्रह्मगवी !) इसके लोमों को काट डालें, इसकी त्वचा को उधेड़े ॥१२,५.६८॥

मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥१२,५.६९॥

(हे ब्रह्मगवी !) इसके मांस को काट डालें और इसके स्नायु संस्थान को फुलाएँ (कुचलें ॥१२,५.६९॥

अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥१२,५.७०॥

(हे ब्रह्मगवी !) इसकी अस्थियों को पीड़ित करें और इसकी मज्जा को क्षीण (विनष्ट) करें ॥१२,५.७०॥

सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥१२,५.७१॥

(हे ब्रह्मगवी !) इसके सभी अंग-अवयवों और पर्वो (जोड़ों) को पृथक् (ढीला) करें ॥१२,५.७१॥

अग्निरेनं क्रव्यात्पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान् महतो वरिम्णः ॥१२,५.७२॥

क्रव्याद् (मांस भक्षक) अग्नि इसे भस्मीभूत करे और वायुदेव इसे अन्तरिक्ष और पृथ्वी से बाहर खदेड़ दें ॥१२,५.७२॥

सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥१२,५.७३॥

सूर्यदेव इसे द्युलोक से बाहर करके भस्मीभूत कर डालें ॥१२,५.७३॥

॥इति द्वादश काण्डम्॥